जयनंदन की १० कहानियाँ

प्राक्कथन

अभिव्यक्ति की दसवीं सालगिरह पर जयनंदन की दस कहानियों के संग्रह का पीडीएफ-संस्करण तथा मुफ़्त डाउनलोड प्रकाशित करना गर्व का विषय है। जयनंदन ऐसे पहले कथाकार थे जो भारत में रहते हुए अभिव्यक्ति का हिस्सा बने। आज से आठ वर्ष पूर्व २००२ में जब उनकी कहानी 'पेटू' अभिव्यक्ति में पहली बार प्रकाशित हुई थी, वे भारत के जाने-माने कथाकारों में से थे। प्रतिष्ठित भारतीय कथाकारों में वेब के प्रति हीनता और उपेक्षा की जो भावना है उससे ऊपर उठकर उन्होंने न केवल वेब से जुड़ने बल्कि निरंतर सक्रिय रहने का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व निभाया। इतना ही नहीं वे नियमित रुप से हमारे कथा महोत्सवों का भी हिस्सा बने और विश्व भर के हिंदी पाठकों तक पहुँचे। भारतीय परिवेश, कसबे और गाँव से लिये गए उनके पात्र भारतीय पक्ष को जिस संवेदनशील शैली में पाठको के सम्मुख रखते हैं वह भारत की आत्मा को समझने में गहराई से सहायक होता है। टीम अभिव्यक्ति की ओर से लेखन के प्रति उनकी निष्ठा और वेब पर उनके सहयोग की हम सराहना करते हैं।

पिछले कुछ सालों से हम अपने उन वरिष्ठ लेखकों के डाउनलोड करने योग्य सुंदर पीडीएफ़ संग्रह नियमित रूप प्रकाशित कर रहे है, जिन्होंने अभिव्यक्ति में दस कहानियाँ पूरी कर ली हैं। इन संग्रहों को इंटरनेट कनेक्शन बंद कर के भी पढ़ा और बाँटा जा सकता है। इस क्रम में यह चौथा संग्रह है। कुछ और लेखक भी जल्दी ही अपनी दस कहानियाँ पूरी करने वाले हैं, आने वाले समय में उनकी कहानियों के भी वेब तथा पीडीएफ़ संस्करण जल्दी पाठकों के पास पहुँचें ऐसी कामना है। आशा है पाठकों को ये सुविधाजनक, रोचक और संग्रहणीय प्रतीत होंगे।

सुझावों और प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में,

पूर्णिमा वर्मन

(संपादक अभिव्यक्ति अनुभूति)

teamabhi@abhivyakti-hindi.org

abhi_vyakti@hotmail.com

जयनंदन- परिचय

जन्म : २६ फरवरी, १९५६ नवादा (बिहार) के मिलकी गाँव में।

शिक्षा : एम ए (हिन्दी)

कार्यक्षेत्र : लेखन एवं प्रबंधन। देश की प्राय: सभी श्रेष्ठ और चर्चित पत्रिकाओं में लगभग सौ कहानियाँ प्रकाशित। कुछ कहानियाँ का फ्रेंच, स्पैनिश, अंग्रेजी, जर्मन, तेलुगु, मलयालम, गुजराती, उर्दू, नेपाली आदि भाषाओं में अनुवाद। कुछ कहानियों के टीवी रूपांतरण टेलीविजन के विभिन्न चैनलों पर प्रसारित। नाटकों का आकाशवाणी से प्रसारण और विभिन्न संस्थाओं द्वारा विभिन्न शहरों में मंचन।

प्रकाशित कृतियाँ :
कहानी संग्रह: 'सन्नाटा भंग`,'विश्व बाजार का ऊँट`,'एक अकेले गान्ही जी`, 'कस्तूरी पहचानो वत्स`,'दाल नहीं गलेगी अब`, 'घर फूंक तमाशा`, 'सूखते स्रोत`, 'गुहार`।
उपन्यास: 'श्रम एव जयते`, 'ऐसी नगरिया में केहि विधि रहना`, 'सल्तनत को सुनो गाँववालो`।
नाटक: 'नेपथ्य का मदारी` तथा 'हमला`।

पुरस्कार :
राधाकृष्ण पुरस्कार, विजय वर्मा कथा सम्मान, बिहार सरकार राजभाषा सम्मान, भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वश्रेष्ठ चयन के आधार पर युवा लेखक प्रकाशन सम्मान आदि।

संप्रति : टाटा स्टील की गृह पत्रिकायें 'खास बात`, 'तालमेल` एवं 'टाटा स्टील समाचार` का संपादन।

संपर्क: jkumar@lot.tatasteel.com

अनुक्रम

- अठतल्ले से गिर गए रेवत बाबू ५
- कल्याण का अंत १५
- छोटा किसान २२
- टेढ़ी उँगली और घी ३१
- नागरिक मताधिकार ४३
- निवेश ५१
- पगडंडियों की आहटें ६०
- पेटू ७०
- सिले हुए ओंठ ८१
- हीरो ८७

अभिव्यक्ति (www.abhivyakti-hindi.org) से मुफ्त डाउनलोड

अठतल्ले से गिर गए रेवत बाबू

रेवत बाबू को लगा जैसे फ्लैट में नहीं किसी मायालोक या फिर उससे भी बढ़कर कहें तो किसी आश्चर्यलोक में वे आ गए हैं। इसे ही कहते हैं ज़मीन से उठकर आसमान में टँग जाना। आठवें तल्ले से वे नीचे झाँकते तो अनायास गिरने के बारे में सोचने लगते। अगर वे फिसलकर ऊपर से नीचे गिर जाएँ। अगर उन्हें कोई धक्का दे दे! उन्हें यहाँ का सब कुछ अपरिचित और अजीबोग़रीब लग रहा था। दोनों बेटे रतन और जतन उन्हें ताड़ रहे थे, उन्हें भाँप रहे थे।

रतन ने उनकी उड़ी हुई रंगत और सहमी हुई आँखों की दयनीयता पर तरस खाते हुए कहा, "बाउजी, अब आप अपने को इस माहौल में ढालिए। निचले तबके के शोरगुल और झंझटों से निकलकर हम शिष्ट, सुखी और संभ्रांत समाज में आ गए हैं। सफ़ाई, सुंदरता, सहूलियत, सुरक्षा, सुख और शांति के मामले में फ्लैट कल्चर से अच्छा दूसरा कोई विकल्प नहीं हो सकता।"

रेवत बाबू ने अपने बेटे के इस मंतव्य का कोई काउंटर नहीं किया। उन्होंने मन ही मन तय कर लिया था कि वे अपने बच्चों पर अपनी कोई नसीहत, अपना कोई संस्कार या अपना कोई जीवन-मूल्य जबरन नहीं थोपेंगे। चूँकि अक्सर यह थोपना ही नयी पीढ़ी की नज़र में बुजुर्गों को विलेन बना देता है। बच्चों की तरह उन्हें डॉक्टर या इंजीनियर बनना नसीब न हुआ, फिर भी वे अपने ख़यालों से लकीर के फकीर कभी नहीं रहे।

छोटी नौकरी की सीमा में रहकर वे बच्चों को उच्च से उच्चतर शिक्षा दिलाने के लिए बड़ी से बड़ी आवश्यकता को भी मुल्तवी करते रहे और अब उनकी खुशी में ही अपनी खुशी समाहित कर देना अपनी बची हुई अवकाश प्राप्त आयु का उन्होंने ख़ास अभिप्राय बना लिया।

पहले तो वे बड़े दुखी हुए जब उनके बेटों ने अपना बना बनाया घर बेचकर फ्लैट ख़रीदने का प्रस्ताव रखा, फिर वे धीरे-धीरे खुद को परिस्थितियों के हवाले करते चले गए। घर बनाने में उन्होंने मूर्त और पार्थिव पदार्थों, ईंट, गारा, सीमेंट, लोहे, पैसे आदि की तुलना में अमूर्त और हार्दिक क्रियाएँ, भावना, निष्ठा, समर्पण, एकाग्रता आदि ज़्यादा लगा रखी थीं। तब उनकी पत्नी आरती देवी जीवित थी और एक-एक ईंट की जोड़ाई में उसका समर्थन, उसका स्पर्श, उसका परामर्श और उसकी शुभकामना शामिल थीं। थोड़ा-थोड़ा करके घर ठीक-ठाक बन गया था और यह उनकी हसरतों, सपनों और उम्मीदों के प्रतिबिंब में ढलता चला गया था। उनकी स्वर्गीया पत्नी की स्मृतियाँ इस घर के चप्पे-चप्पे में बसी थीं जिनसे वे अक्सर एक अनिर्वचनीय संवाद कर लेते थे।

जब रतन इंजीनियर बन गया और जतन डॉक्टर तो आरती के भीतर अपेक्षाओं की एक से एक ऊँचे मीनारें और गुंबज खड़े होने लगे। वह खूब इतराती और सफलता का सारा श्रेय अपने मातृत्व और अपनी परवरिश को न देकर अपने इस घर को देती। अब सोचते हैं रेवत बाबू तो उन्हें लगता है कि अच्छा हुआ वह झटके से किसी बीमारी के बहाने चल बसी, वरना घर को बिकते हुए देखना उसके लिए मानो कयामत देखने के बराबर होता। अमेरिका में चार साल रहकर लौटते हुए रतन ने एक विदेशी लड़की को अपने साथ कर लिया और जतन ने नगर के ही मेडिकल कॉलेज में पढ़ाते हुए एक सहकर्मी डॉक्टरनी को पसंद कर लिया। उनके खानदान में यह पहली बार हुआ कि घर में बहुओं के लाने में बाप एक मूक दर्शक बना दिया गया।

रतन ने कहा था, "बाउजी, अब हम लोग इस जनता नगर में नहीं रह सकते। यहाँ जीने की कोई क्वालिटी नहीं है। आसपास के लोग गंदे हैं, असभ्य हैं, ज़ाहिल हैं, अशिक्षित हैं, झगड़ते रहते हैं, सफ़ाई पर ध्यान नहीं देते। हमारा पड़ोसी नाई, धोबी, बढ़ई, लुहार, फलवाला, दूधवाला हो, यह अच्छा नहीं लगता।"

रेवत बाबू रतन का मुँह देखते रह गए थे, जैसे उसकी घृणा पड़ोसियों के प्रति नहीं अपने बाप के प्रति उभर आई हो। वे भी तो इन्हीं की श्रेणी के आदमी रहे। कारखाने में एक मामूली मज़दूर। मुख्य शहर से तीस किलोमीटर दूर इस नयी बस रही बस्ती में जब उन्होंने ज़मीन लेनी चाही थी तो इन्हीं फलवाला और दूधवाला ने उनके लिए दौड़-धूप की। दूधवाला जगरनाथ उनके गाँव का था जिसने उन्हें यहाँ बसाने में अपनी पूरी सामर्थ्य लगा दी थी। यह ठीक था कि यहाँ बहुत सफ़ाई नहीं थी। योजनाबद्ध रूप से पानी का निकास नहीं था, लोग रास्ते पर पानी गिराने, चापाकल से पानी लेने, बिजली खंभे पर तार के इधर से उधर कर देने आदि छोटी-छोटी बातों को लेकर झगड़ जाया करते थे। लेकिन वे दिल से सच्चे और स्वच्छ थे और अगले ही दिन आपस में फिर बतियाते नज़र आ जाते थे। किसी भी दुख-बीमारी या आफ़त-मुसीबत में दौड़े चले आते थे।

रतन की हामी भरते हुए जतन ने जोड़ा था, "यहाँ से बच्चों की बेहतर पढ़ाई नहीं हो सकती। सारे शीर्षस्थ स्कूल मुख्य शहर में स्थित हैं। यहाँ कोई अच्छा टयूटर भी उपलब्ध नहीं हो सकता। बच्चे कल डांस या म्यूज़िक क्लास या फिर स्पोर्ट कोचिंग ज्वाइन करना चाहेंगे, मगर यहाँ से उनका कुछ नहीं हो सकेगा।"

रेवत बाबू को लगा कि उनसे यह संवाद इसी घर में पला-बढ़ा उनका बेटा नहीं कोई ग़ैर आदमी कर रहा है जिसके मुँह में जन्म से ही सोने का चम्मच लगा हुआ है। उन्होंने ज़रा दबे स्वर में पूछा, "बेटे, तुम दोनों ने इसी घर में रहकर अपनी पढ़ाई पूरी की और इसी घर में रहकर खूब कबड्डी खेली और पतंग उड़ाए, क्या पढ़ने में या ताकत में किसी से पीछे रह गए?"

अपने पिता को यों निहारा जतन ने जैसे उनके अल्पज्ञान का हास्य कर रहा हो, "बाउजी, आप नहीं समझेंगे कि यहाँ रहकर हमने क्या-क्या चीज़ें मिस की। हमने क्रिकेट खेलना नहीं सीखा, नाटक करना नहीं सीखा, क्विज़ या एलोक्यूशन आदि में भाग नहीं लिया, म्यूज़िक क्लास या अच्छा टयूशन ज्वाइन नहीं कर सका, अच्छी मूवी नहीं देखी, अच्छी सोसाइटी के तौर-तरीके नहीं सीखे।" रेवत बाबू उसे टुकुर-टुकुर ताकते हुए निरुत्तर से हो गए। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कोई निर्वस्त्र करके उन्हें उनकी नग्नता का बोध करा रहा है।

"इस बस्ती में वाटर लाइन तक की व्यवस्था नहीं है। कुआँ का प्रदूषित पानी पीना पड़ता है। शुद्ध पानी के बिना जहाँ कई बीमारियों का डर बना रहता है वहीं बच्चों के मानसिक और शारीरिक विकास पर भी असर पड़ता है।" रतन ने जैसे दूर की कौड़ी खोज निकाली।

रेवत बाबू ने कहा, "गाँव में हमारे पूर्वज पीढ़ी दर पीढ़ी कुएँ का ही पानी पीते रहे और आज भी पी रहे हैं। इससे ऐसा नहीं कि वंश आगे नहीं बढ़ा। इस मकान में रहते हुए आज सत्ताईस वर्षों से हम भी कुएँ के पानी पर ही आश्रित रहे, क्या तुम लोगों के दिमाग़ और स्वास्थ्य पर कोई फ़र्क पड़ा? बेटे, कुआँ तो कुदरत का खज़ाना है। जाड़े में इसका पानी गरम होता है और गर्मी में ठंडा।"

"बाउजी, आपको मालूम नहीं है, पानी का सिर्फ़ साफ़ दिखना ही उसे पीने योग्य नहीं बना देता। उसमें घुला हुआ जीवाणु और विषाक्त पदार्थ दिखाई नहीं पड़ता। वह फिल्टर प्लांट में शुद्ध होता है। वहाँ पानी इस तरह ट्रीटमेंट करके फिल्टर किया जाता है कि उसमें पोषक खनिज तत्व नष्ट न हों। डॉक्टर हूँ मैं, अब तो आप मेरी बात मान लिया कीजिए।"

इस ब्रह्मास्त्र के बाद रेवत बाबू को तो नि:शस्त्र हो ही जाना था। रतन ने उनमें मोह के बचे-खुचे मलबे को पूरी तरह बहा देने के ख़याल से अपना एक और ताक़तवर प्रेशर पंप निकाल लिया, "बाउजी, इस घर को बेच देने से एक तो इस इलाके से हमें मुक्ति मिल जाएगी, दूसरा- बैंक से गृह निर्माण ऋण लेकर फ्लैट ख़रीद लेने से आयकर में भारी छूट लेने के भी हम हकदार हो जाएँगे।"

रेवत बाबू को व्यवस्था का यह प्रावधान बड़ा विचित्र लगा कि जिसे कर्ज़ लेने की कोई ज़रूरत नहीं है, उसके लिए भी कर्ज़ लेने का एक आकर्षण तय कर दिया गया है।

उनके भीतर जैसे एक भूचाल समा गया। तो क्या सचमुच इस घर को बेच देना पड़ेगा? उनका ध्यान उन गाय और बकरी की तरफ़ चला गया, जिन्हें उन्होंने एक अर्से से पाल रखी थीं और जिनकी देखरेख व सेवा-टहल उनकी दिनचर्या व व्यस्तता का एक प्रमुख अंग बन गई थी। इनके बिना कैसे गुज़रेगा उनका वक्त? गाय उन्होंने उस वक्त लाई थी जब रतन-जतन कॉलेज पहुँच गए थे और उन्हें पर्याप्त दूध की ज़रूरत थी। दोनों को ही दूध बहुत पसंद था, जितना भी दो उनका मन नहीं भरता था। तब आरती ने ही सुझाया था, "दूध ही तो है जो इन पढ़नेवाले बच्चों को भरपूर ताकत देता है। इन्हें ख़रीदकर कितना दूध पिलाइएगा, एक गाय ले लीजिए।"

रेवत बाबू गाँव चले गए दीदी के पास। दीदी ने उन्हें अपनी एक गाय दे दी। यह गाय इतनी सुलच्छिनी और सुपात्र निकली कि घर में दूध की तो मानो निर्झरणी फूट पड़ी। धन-धान्य, स्वास्थ्य और पढ़ाई-लिखाई में बरकत ही बरकत होती चली गई। आरती ने इसका नाम रामवती रख दिया और इसे घर की लक्ष्मी मानने लगी।

घर में एक बूढ़ी बकरी भी थी जिसके ख़रीदे जाने का प्रसंग भी जतन से ही जुड़ा था। मेडिकल प्रवेश परीक्षा की ज़ोरदार तैयारी के दरम्यान वह रात-रात भर जागरण कर लिया करता था। इस कड़े अभ्यास से उसे अपच और खट्टे डकार की शिकायत रहने लगी थी। एक वैद्य ने उन्हें सुझाया कि इसे शाम को एक बार बकरी का दूध दिया

कीजिए, पाचन क्रिया अपने आप दुरुस्त हो जाएगी। उन्होंने एक बड़ी नस्ल की बकरी ख़रीद ली जिसका दूध जतन के लिए सचमुच अमृत साबित हुआ। जब जतन ने प्रवेश परीक्षा पास कर ली तो मानो वे बकरी के ऋणी हो गए। लगा कि उसे बेच देना एक अपराध होगा। बकरी घर में ही रह गई। आरती ने उसका नाम सामली रख दिया था।

रामवती और सामली अब बच्चे देने की उम्र में नहीं थीं। अत: उनका ख़रीददार सिर्फ़ कसाई ही हो सकता था। रेवत बाबू इस क्रूरता को अंजाम कैसे दे सकते थे। बेटों से जब अपनी यह दुविधा व्यक्त की तो उनके चेहरे पर एक उपहास उड़ाने का भाव उभर आया। रतन ने कहा, "बाउजी, इस तरह की कोरी भावुकता से दुनियादारी नहीं चलती। आदमी के लिए जानवर एक कोमोडिटी है, उसका काम ख़त्म, उससे लगाव ख़त्म। करोड़ों ऐसे हैं जो माँस खाते हैं और माँस व चमड़े का धंधा करते हैं। पशु-पालन वैसा ही है जैसे मुर्गी-पालन, मधुमक्खी-पालन, रेशमकीट-पालन और मत्स्य-पालन होता है। जानवरों से ऐसा मोह कि वह पैर की बेड़ी बन जाए, सरासर एक बचकानापन है।"

रेवत बाबू व्यापारियों और मुनाफ़ाखोरों वाली इस भाषा से ज़रा-सा भी सहमत नहीं हुए। उन्हें लगा कि भला करने के एवज में भाला भोंकने की कहावत ये लड़के चरितार्थ कर रहे हैं। वे यह तो समझ गए थे कि घर का बिकना अब तय है, लेकिन वे इस फ़ैसले पर भी आरूढ़ थे कि रामवती और सामली को किसी हाल में नहीं बेचना है। वे अपनी चिंता लिए हुए जगरनाथ के पास चले गए। पास ही में था जगरनाथ का खटाल। आठ भैंसे थीं उसके पास, जिनसे उसकी दाल-रोटी चलती थी। वह उनका सजातीय नहीं था तब भी वे एक-दूसरे के शुभचिंतक थे और किसी की कोई गुत्थी उलझ जाती थी, तो वे मिलकर सुलझाने की कोशिश करते थे। जगरनाथ कम पढ़ा-लिखा होकर भी दुनियादारी का अच्छा तैराक था।

उसने समझाया रेवत बाबू को, "भैया, बच्चों को नाराज़ करना ठीक नहीं है। इनकी खुशी में ही अब आपकी खुशी है। जब उन्हें पसंद नहीं तो आज न कल वे घर बेच ही देंगे। आप भाग्यशाली हैं कि आपके दोनों बेटों ने ऊँचे मुकाम हासिल कर लिए। आप रामवती और सामली की फ़िक्र मत कीजिए। उन्हें मेरे पास छोड़ दीजिए। जहाँ आठ ढोरों की देखभाल करता हूँ, वहाँ दो और सही।"

रेवत बाबू ने उसकी हथेलियों को अपनी हथेलियों के घेरे में भर लिया और विह्वल हो उठे, "तुमने मेरी बहुत बड़ी समस्या हल कर दी जगरनाथ। मैं तुम्हारा यह एहसान कभी नहीं भूलूँगा भाई।"

"रेवत भैया, आपमें हमदर्दी की इतनी गहरी झील बसती है, मैं तो रीझ गया हूँ आप पर।"

"रामवती और सामली पर जो भी खर्च आएगा मैं तुम्हें दे दिया करूँगा।"

"आपकी जैसी मर्ज़ी भैया।"

फ्लैट में आ गए रेवत बाबू। कैंपस के गेट पर मोटे-मोटे हरूफ़ में लिखा था, 'वसुंधरा गार्डेन', ए ड्रीम प्लेस ऑफ दी सिटी। लगभग डेढ़ हज़ार वर्गफुट का काफ़ी महँगा, आलीशान और अत्याधुनिक फ्लैट था वह। बिल्डर ने कैंपस का शानदार श्रृंगार और सजावट कर रखी थी। वहाँ दस-दस तल्ले के बीस-बीस फ्लैट वाले कुल बीस ब्लॉक थे। रेवत बाबू को लगता ही नहीं था कि यहाँ कोई उनके रूप, रंग और रचाव से मेल खाता आदमी है। वे भौंचक थे कि इस एक दुनिया में कितनी अलग-अलग दुनिया समाई है। बाथरूम, टायलेट, फ़र्श, दीवारें, रसोई, खिड़कियाँ, पर्दे, बालकनी सबमें अभिजात्य का अदभुत परचम लहरा रहा था। उन्हें बिल्कुल नये सिरे से इनमें रहने का तरीका सीखना पड़ रहा था। अपने जनता नगर में वे मनमर्ज़ी टहल आते थे, घूम आते थे, किसी के भी घर चले जाया करते थे। अब यहाँ ऐसा संभव नहीं था। यहाँ लगता ही नहीं था कि किसी से वे घुल-मिल सकेंगे। हर आदमी उन्हें समृद्धि व बड़प्पन का एक अजीबोगरीब चोंगा ओढ़े हुए ऐसा दिख रहा था जैसे किसी से वह बोल-बतिया लेगा तो उसकी इज़्ज़त मिट्टी में मिल जाएगी।

एक दिन उन्होंने अख़बार में पढ़ा कि उनके बाजू के फ्लैट की एक लड़की सामनेवाले ब्लॉक के एक लड़के के साथ भाग गई। उन दोनों के बेडरूम की खिड़की और बालकनी आमने-सामने थीं। ऐसे फ्लैटों में भी प्यार करने की गुंजाइशें बालकनी और खिड़की के रास्ते निकाली जा सकती हैं, यह पढ़कर जहाँ उन्हें अच्छा लगा, वहीं बुरा भी लगा कि पड़ोस की ख़बर उन्हें अख़बार से मिल रही है। सीढ़ी में उन्नीस और लोग रहते थे, इनकी उन्हें कोई जानकारी नहीं थी। एक बार रतन से उन्होंने पूछा तो बहुत याद करके वह दो-तीन नाम ही बता सका।

थोड़े ही दिन बाद इसी वसुंधरा गार्डेन की एक और ख़बर पढ़ने को मिली। कहीं बाहर गए हुए परिवार के ताला लगे फ्लैट को कुछ चोरों ने दिन में ही खोल लिया और उसका पूरा सामान सामने ट्रक लगाकर लोड कर लिया। देखनेवालों ने यही समझा कि फ्लैटवाला यहाँ से कहीं शिफ्ट कर रहा है। रेवत बाबू ने सोचा कि जब लोग एक-दूसरे से इस तरह बेख़बर, आत्मलिप्त और असामाजिक होकर रहेंगे तो ऐसी वारदात तो होगी ही। जनता नगर में तो किसी का भी नाम पूछकर उसका घर ढूँढ़ा जा सकता था और घर पूछकर उसमें रहनेवाले का नाम जाना जा सकता था।

एक दिन एक और ख़बर उन्होंने पढ़ी कि एक फ्लैट में छापा मारकर पुलिस ने देह-व्यापार के एक पूरे रैकेट को पकड़ लिया। रेवत बाबू को लगा कि किसी दिन किसी फ्लैट में बम-बारूद बाँधा जा रहा होगा और पता तब चलेगा जब किसी चूक के कारण पूरा फ्लैट विस्फोट में उड़ जाएगा।

शुरू-शुरू में तो उन्हें ऐसा जान पड़ा जैसे वे किसी डिब्बे में बंद कर दिए गए हैं। उकता जाते तो वे बार-बार नीचे उतरकर कैंपस के पार्क, जिम या मार्केट की तरफ़ चक्कर लगा आते। एक दिन उन्हें महसूस हुआ कि उनके बार-बार आने-जाने पर लिफ्ट में कुछ लोग उन्हें गुस्से से घूरने लगे हैं। उन्होंने एक आदमी से पूछ लिया, "क्यों भाई, मेरे आने-जाने से आपको कोई तकलीफ़ है?"

उसने कहा, "काम से जाने-आने वाले उन आदमियों को तकलीफ़ तो होगी ही, जिन्हें आपके चलते लिफ्ट के लिए वेट करना पड़ता है।"

एक दिन रतन ने भी टोक दिया, "बाउजी, आपके इस तरह बेमतलब आते-जाते रहने और नीचे लावारिस चक्कर लगाने से हमारी प्रेस्टिज पर आँच आती है।"

उजबक की तरह मुँह देखते रह गए रेवत बाबू। इस बुढ़ापे में क्या-क्या सबक सीखनी होगी उन्हें? पहले तो यहाँ आते ही उन्हें बताया गया कि घर में लुंगी-गंजी पहनना छोड़कर पाजामा-कुरता पहना करें। ज़िंदगी भर वे घर में लुंगी-गंजी ही पहनते रहे। गर्मी के दिनों में तो वे उघारे बदन पड़ोस के किसी घर में भी जाना हो तो चले जाते थे। अब हरदम पाजामा-कुर्ता पहने रहने से उन्हें ऐसा लगता था जैसे वे अपने घर में नहीं, बल्कि किसी रिश्तेदार के यहाँ पाहुन बनकर बैठे हों। अब कहते हैं उनके घूमने से प्रेस्टिज ख़राब हो जाती है। आख़िर वे क्या करें पूरा दिन?

वहाँ बाड़ी में उन्होंने कई तरह के गाछ लगा रखे थे। केला, अमरूद, आम, कटहल, सहजन, बेर, पपीता, शरीफा, बेल, अनार आदि के। इन सबके फल सहज ही उपलब्ध हो जाया करते थे। कुछ सब्ज़ियाँ भी उगा लेते थे। उन्हें फूलते, फलते और बढ़ते देखना एक सुखद अनुभूति दे जाता था। यहाँ हरियाली को विलासिता का फुदना बनाकर दो-तीन दर्जन गमले रख लिए गए थे, जिनमें बौने और बाँझ पौधे तीन-तीन, चार-चार किलो मिट्टी में खुसे हुए दिखते थे। इन्हें देखकर रेवत बाबू को लगता था जैसे ये पौधे ज़मीन से उखड़कर अपने दुर्भाग्य का विलाप कर रहे हैं, उन मछलियों की तरह जो समुद्र से लाकर बोतल में डाल दी जाती हैं।

अपने घर में वे अक्सर ऐसी ही चीज़ें रखते आए थे जो किसी न किसी काम आए। यहाँ वे देख रहे थे कि सिर्फ़ शोभा, दिखावा और शान बढ़ाने के लिए अजीब-अजीब शक्ल-सूरत की महँगी-महँगी वस्तुएँ कहीं फ़र्श पर, कहीं दीवार पर, कहीं दराज़ पर टिका दी गई हैं जिनका कोई मानी-मकसद उन्हें आजतक समझ में नहीं आया। कहते थे ये पेंटिंग्स हैं, ये स्कल्पचर हैं, ये एंटीक पीस हैं, ये झाड़-फानूस हैं, ये कालीन हैं। रतन का तीन साल का बेटा और जतन की ढ़ाई साल की बेटी किसी नर्सरी स्कूल में भेजी जाने लगी थीं।

सुबह बच्चे जाना नहीं चाहते, रोते, कलपते और कई तरह के नखरे करते। रेवत बाबू का मन दया से भर जाता, भला यह भी कोई उम्र है पढ़ने की! ये बच्चे ही घर में होते थे जिनके साथ उनका मन लगा रहता था, वरना दस बजते-बजते घर से बेटे-बहुएँ सभी निकल जातीं। उन्हें यह अजीब लगता कि इस तरह पैसा कमाने का क्या मतलब है कि कोई एक गृहस्थी सँभालनेवाला तक न रह जाए? इस काम के लिए एक मेड रख ली गई थी, जो बर्तन-वासन और झाड़ू-पोंछा करते हुए उनके लिए खाना भी बना दिया करती। एक-डेढ़ बजे बच्चे घर आ जाते तो रेवत बाबू उन्हें खिला-पिलाकर होम वर्क कराने में भिड़ जाते।

जतन ने एक दिन यह काम करने से भी उन्हें मना कर दिया, "बाउजी! आप क्यों बेकार इनके साथ मगज़मारी करते हैं? इन्हें हिंदी में नहीं पढ़ना है, ये अंग्रेज़ी माध्यम के बच्चे हैं। शाम में एक टयूटर आ जाया करेगा। हम चाहते हैं कि अंग्रेज़ी इनकी घुट्टी में शामिल हो जाए। ये बच्चे हँसे, गायें, रोएँ, सोचें, लिखें, पढ़ें, बोलें, खेलें सब अंग्रेज़ी में। कल जब ये बच्चे बड़े होंगे तो इनके आजू-बाजू का पूरा वायुमंडल इतना ग्लोबलाइज़ हो चुका होगा कि अंग्रेज़ी न जाननेवाले को झाड़ू मारने की नौकरी भी नहीं मिल सकेगी। अंग्रेज़ी हमारा बेस नहीं रही, जिसके चलते हम बहुत सफरर रहे। हमारे बच्चों के साथ ऐसा न हो, इसलिए हम चाहते हैं कि घर में सारी बातचीत अंग्रेज़ी में ही हो। इसमें हमें आपका सहयोग चाहिए।"

रिले रेस की तरह वक्तव्य का अगला हिस्सा रतन ने सँभाल लिया था, "होमवर्क करानेवाला जो टयूटर आएगा, वह कुछ समय रुककर आपको इंग्लिश स्पीकिंग का अभ्यास कर दिया करेगा। आप इसका अन्यथा न लें बाउजी। अंग्रेज़ी नहीं बोलनेवालों की इस संभ्रांत और शिक्षित समाज में क्या कद्र है, आप देख ही रहे हैं।"

उनके मन में आया - तो क्या आज तक उनका पूरा खानदान या फिर देश की 90 प्रतिशत आबादी अंग्रेज़ी के बिना ज़ाहिल ही बनकर रहती आई? उनकी कोई कद्र नहीं रही? क्या विडंबना है कि इस बूढ़े सुग्गे को अब अंग्रेज़ी सीखनी होगी! फ्लैट में आए एक माह होनेवाला था। रेवत बाबू को रामवती और सामली की याद अक्सर आ जाती। ख़ासकर जब सुबह ही सुबह डेयरीवाले दूध देने आ जाते। डेयरी का दूध उनसे एक दिन भी पिया न गया। जिंद्गी भर उन्होंने अपने सामने दुहे हुए ताज़ा दूध का सेवन किया। पिछले दिनों अख़बारों में उन्होंने पढ़ा था कि यूरिया और डिटरजेंट से दूध बनाकर लोग पैकेट में भर देते हैं। जतन ने उन्हें समझाने की कोशिश की थी, "बाउजी, डेयरी का दूध ज़्यादा फायदेमंद है। इसे पास्चराइज़ करके बैक्टीरिया फ्री कर दिया जाता है और इसमें सारे पोषक तत्वों की संतुलित मात्रा नियंत्रित रखी जाती है। आप यह दूध पिया कीजिए। बुरे और शातिर लोग गड़बड़ी फैलाते हैं, इसका मतलब यह नहीं कि सब कुछ दूषित और ज़हरीला बन गया।"

सरेंडर कर जाने की अब उनकी आदत बनती जा रही थी। उनकी पसंद-नापसंद की अब यहाँ कोई कीमत नहीं थी। जिस चीज़ से उन्हें सख़्त चिढ़ थी, उसकी भी अब कोई रत्ती भर परवाह नहीं की जा रही थी। घर में एक अल्शेसियन कुत्ता ले आया गया। उन्होंने कई दिनों तक मौन रहकर अपनी नाराज़गी प्रकट की, मगर कोई फ़ायदा नहीं।

कुत्ता पूरे घर में घूमने और हर चीज़ सूँघने के लिए आज़ाद था। वह एक ऐसा केंद्र बन गया जो घर के सभी सदस्यों का ध्यान आकर्षित करने लगा। उसका नाम रखा गया फंडू। कोई उसे पुचकार रहा है, कोई उसे सहला रहा है, कोई उसे खिलाना चाह रहा है। उसके लिए रोज़ाना दूध और बकरे के गोश्त मँगाने का एक विशेष इंतज़ाम किया गया। उसे शैंपू से नहलाया जाता और सुबह-शाम मैदान ले जाकर घुमाया जाता। एक कुत्ते को इतना सर चढ़ाना, उस पर इतना खर्च करना, रेवत बाबू के लिए अत्यंत तकलीफ़देह था। उसका अकस्मात आकर पैर चाटने लगना, गोद में चढ़कर नाक-मुँह सूँघने लगना, बिस्तर पर चढ़कर आसन जमा देना, उन पर एकदम नागवार गुज़र जाता। वे उसे डाँटकर दुरदुरा देते, कुत्ता गुर्रा उठता। घरवाले, ख़ासकर उनकी बहुएँ और पोता-पोती दुरदुराने और गुर्राने के दृश्य का विशेष आनंद उठाने लगे, यों जैसे वे कोई विदूषक हों।

रेवत बाबू ने यहाँ आदत बना ली थी सुबह ही सुबह मार्निंग वॉक करने की। वे जानते थे कि आराम उम्र को घुन की तरह खोखला कर देता है। यहाँ मार्निंग वॉक के सिवा दूसरा कोई उपाय न था। घरवाले बेटे-बहुओं को देर तक सोने की आदत थी। फंडू के आ जाने से उनमें से किसी एक को उठना पड़ता था। शुरू-शुरू में तो जोश में उठे, फिर वे अलसाने लगे। फंडू धुँध छँटते ही बाहर जाने को मचलने लगता और दरवाज़े पर जाकर पंजे मारने लगता।

रतन ने एक दिन कह दिया, "बाउजी, आप तो रोज़ टहलने जाते ही हैं, कल से ज़रा फंडू को भी लेते जाइए।"

मिज़ाज़ बुरी तरह कुढ़ गया रेवत बाबू का, लेकिन वे कर भी क्या सकते थे? कुत्तों के प्रति लाख घृणा और गुस्से के बावजूद उन्हें रतन की बात माननी पड़ी। वे रोज़ देखते थे कि नीचे कई लोग कुत्तों को लेकर घिसटते हुए पार्क की तरफ़ बढ़े जा रहे हैं। ऐसे लोगों पर उन्हें कोफ्त होती थी। अब वे खुद भी उसी श्रेणी में शामिल होने जा रहे थे। एक कुत्तावाला तो उन्हें रोज़ पार्क में मिल जाया करता था जिसे देखते ही उनका पारा चढ़ जाता। उसका कुत्ता उनके बगल से गुज़रते ही पता नहीं क्यों ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लग जाता। सैकड़ों लोग होते पार्क में, मगर सिर्फ़ उन्हें ही देखकर उसके भौंकने का स्विच ऑन हो जाता। उसका मालिक कुत्ते को डाँटकर चुप कराने का स्वांग करने लगता, लेकिन उसके होठों पर एक दबी-दबी मुस्कान भी उभर आती।

रेवत बाबू देख रहे थे कि अब इस दृश्य का मज़ा लेनेवालों में कई और लोग शामिल हो गए हैं। वे उसे सुनाते हुए बड़बड़ा उठते, "पता नहीं लोग कुत्ते क्यों पालते हैं? और अगर पालते भी हैं तो ऐसे पागल कुत्ते रखकर दूसरों को तंग करने में क्या मज़ा मिलता है?"

जब रेवत बाबू पहला दिन फंडू को लेकर पार्क पहुँचे तो जैसे वे एक तमाशा बन गए। सभी लोग घूर-घूर कर देखने लगे कि कुत्तों से चिढ़नेवाला आदमी आज खुद भी कुत्ता लेकर आ गया। भौंकनेवाले कुत्ते के मालिक की आँखें तो ताज्जुब से फटी की फटी रह गईं। रोज़ की तरह उसका कुत्ता फिर भौंकने लगा, मगर आज उसे चुप कराने की उसने कोई चेष्टा नहीं की। रेवत चाह रहे थे कि जवाब में फंडू भी उससे ज़्यादा तेज़ भौंके, मगर वह अपनी पूँछ सटकाकर उनके पैरों के पास दुबक गया। सबका खूब मनोरंजन हुआ वह दृश्य देखकर। सबने यही समझा कि जवाब देने के लिए ख़ास तौर पर लाया गया कुत्ता नकारा साबित हो गया। उनका तो मन हो रहा था कि साले फंडू के बच्चे को वहीं कहीं चारदीवारी के बाहर हांक दें। मन मसोसकर घर लौटे। घर में किसी से इसका ज़िक्र भी नहीं कर सकते थे। नाहक एक और प्रहसन का सृजन हो जाता।

एक रोज़ रात को उनके लिए जगरनाथ का फ़ोन आ गया। वे खुश हो उठे, "हाँ बोलो, जगरनाथ।"

"भैया, आज शाम को मैं आपके यहाँ गया था लेकिन गेट के दरबान ने मुझे अंदर जाने नहीं दिया।"

वे समझ गए कि इंटरकॉम पर गेट के सिक्युरिटी ने घरवालों से पूछा होगा तो इधर से कह दिया गया होगा कि बाउजी घर में नहीं हैं, मत भेजो। कैसी दुनिया है यह? जनता नगर में अपने ओसारे पर गाँववाले दालान की तरह उन्होंने चौकी बिछा रखी थी, जिनका मन करे आएँ, बैठें, बतियाएँ, सो जाएँ। यहाँ आनेवाले से पहले फ़ायदा और नुकसान का हिसाब लगाया जाता है, फिर उसे 'भेज दो' या 'लौटा दो' का आदेश निर्गत किया जाता है।

जगरनाथ ने आगे कहा, "आपकी दीदी की चिट्ठी आई है, मैंने दरबान को दे दी है।"

रेवत बाबू ने उसे धन्यवाद देते हुए रामवती और सामली के बारे में पूछ लिया। जगरनाथ ने कहा कि दोनों ठीक हैं।

वे झट जाकर दरबान से चिट्ठी ले आए। दीदी ने लिखा था, 'मैं आ रही हूँ, एक महीना तुम्हारे पास रहूँगी।' रेवत खुश हो गए। उन्होंने अगले ही दिन फ्लैट का पता लिखकर जवाब भेज दिया और कहा कि वह जब मर्ज़ी आ जाए। वे और दीदी सहोदर भाई बहन थे। दीदी उनसे सात साल बड़ी थी और बचपन में ही माँ के निधन हो जाने पर घर उसने ही सँभाला था। अपने इकलौते भाई पर वह हमेशा जान छिड़कती रही थी। जनता नगर के घर में वह हर आड़े वक्त में आती रही। रतन और जतन के जन्म के समय आरती के प्रसव को दीदी ने ही आकर सँभाला था। गाँव में कुछ भी नयी फसल कटती, दीदी उसकी सौग़ात किसी के ज़रिए ज़रूर पठा देती या फिर खुद ही लेकर आ जाती। फ्लैट की इस अजनबी दुनिया में दीदी एक महीने साथ रहेगी, यह समाचार उनके एकाकी मन को बहुत सुकून दे गया।

वे दीदी के आने की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे।

एक शाम जब वे पार्क में यों ही एक-दो घंटे बिताकर घर लौटे तो जतन ने बताया, "गाँव से फुआ आई हुई है जिसे मैंने पास ही के एक अच्छे होटल कंचन में ठहरा दिया है।"

एक पल के लिए तो जैसे काठ हो गए रेवत बाबू। उन्होंने आँखे तरेरकर पूछा, "होटल में ठहरा दिया, मगर क्यों? वह मेरे साथ रहने आई है।"

बड़े शांत और संयत होकर कहा जतन ने, "बाउजी, इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है। आप देख ही रहे हैं कि फ्लैट में जगह बहुत सीमित है। अमेरिका से कल भैया का साला आनेवाला है, वह एक अप्रवासी भारतीय है और इंडिया में पहली बार आ रहा है निवेश की संभावना तलाश करने। भैया जिस कारखाने में इंजीनियर हैं, उसमें अगर निवेश का समझौता हो गया तो भैया के स्तबे में चार चाँद लग जाएगा। इसलिए हमें पहले उसका ख़याल रखना ज़रूरी है।"

रेवत बाबू का दुख किसी गुब्बारे की तरह फट पड़ा, "इस घर में कुत्ता रह सकता है लेकिन मेरी बहन नहीं रह सकती। अरे जगह की कमी थी तो कहा होता मुझे, मैं बालकनी में या कहीं भी फ़र्श पर सो जाता।"

"फुआ का जो हुलिया है, उसे अगर हम घर में एडजस्ट कर भी देते तो उसका प्रभाव अच्छा नहीं होता, बाउजी।"

"ठीक कहा तुमने, अमेरिका से खुदा बनकर जो डॉलर का निवेश करने आ रहा है उसका इम्प्रेशन, गाँव की एक अनपढ़-गरीब औरत को तुम्हारे फुआ के रूप में देखकर, अच्छा कैसे रह पाता! देख लो, कहीं बाप के रूप में मुझे देखकर भी उनके निवेश का मुड तो ख़राब नहीं हो जाएगा?"

शुरू-शुरू में जब रेवत फ्लैट में आए थे तो अक्सर उनका ध्यान ऊपर से नीचे गिरने पर चला जाता था। आज उन्हें लगा कि वे सचमुच अठतल्ले से ढकेल दिए गए।

वे भागते हुए होटल पहुँचे, मगर वहाँ दीदी नदारद थी। पता चला आधे घंटे में ही वह होटल छोड़कर चली गई। काटो तो खून नहीं, कहाँ गई होगी दीदी? उनके सिवा और कोई भी तो नहीं है परिचित। जाड़े की रात में फुटपाथ पर भी नहीं सोया जा सकता। आज वापसी के लिए भी कोई साधन नहीं। अचानक उनके माथे में जगरनाथ का नाम कौंध गया। एक ऑटो लिया और वे पहुँच गए जगरनाथ के घर। वहाँ उन्होंने देखा कि एक छोटे से अलाव के सामने दीदी को बिठाकर जगरनाथ और उसकी घरवाली मनुहारपूर्वक खाना खिला रहे हैं। हृदय भर आया रेवत बाबू का। एक गाँव के होने के अलावा उनका कोई नहीं लगता जगरनाथ, फिर भी उनकी दीदी को कितना मान दे रहा है। दीदी ने उन्हें देखते ही खाना छोड़कर अपनी बाहें फैला दी और उन्हें गले से लगा लिया, "मुझे तो लगा था कि अब अपने भाई रेवत से मेरी मुलाक़ात नहीं हो सकेगी। नये धान का चूड़ा, फरही और गन्ने का नया गुड़ लेकर आई हूँ। सोचा था इन्हें जगरनाथ के पास छोड़कर कल वापस चली जाऊँगी।"

रेवत फूट-फूटकर रो पड़े, "मुझे माफ़ कर देना दीदी, तुम्हारे साथ जो सलूक हुआ, उसका गुनहगार हूँ मैं।"

दोनों भाई-बहन बैठकर सुख-दुख बतियाने लगे। कुछ ही देर बाद उन्हें रामवती और सामली का ख़याल आ गया। उन्होंने एक थाली में दीदी का लाया चूड़ा और गुड़ निकाला, दो-तीन फांक चूड़ा खुद खाया और बाकी लेकर बाजू में ही स्थित गोहाल चले गए। रामवती एक खूँटे में बँधी थी और पास ही में सामली भी। उन्हें लगा कि एक डेढ़-महीने में दोनों कुछ ज़्यादा ही बूढ़ी हो गईं। उन्होंने पुकारा, "रामवती, सामली।" सामली 'में-में' करके कान हिलाने लगी और रामवती टुकुर-टुकुर उनका मुँह देखने लगी।

उन्हें महसूस हुआ जैसे इन आँखों में ढेरो गिले-शिकवे भर गए हैं। उन्होंने तीन-चार मुट्ठी चूड़ा सामली के आगे और थाली रामवती के मुँह के पास रख दी। दोनों खाने से बेपरवाह उनके मुँह ही देखती रहीं। रेवत ने रामवती की लंबी मुखाकृति को अपनी गर्दन से लगा लिया और एक बार फिर बिलख पड़े, "रामवती, मैंने तुम दोनों को बेघर कर देने का गुनाह किया, देखो, आज मैं भी अठतल्ले से नीचे गिर गया।"

(१६ सितंबर २००५ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

कल्याण का अंत

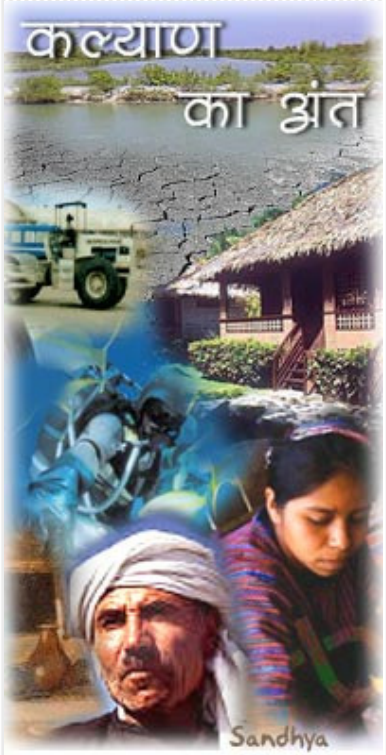

पता नहीं किस अर्जुन ने या किस राम ने अग्निबाण चलाया कि सौ वर्षों से भी ज्यादा उम्रवाला कल्याण तालाब सूख गया। इसके लगातार घट रहे जलस्तर को देखकर सारे बूढ़े-बुजुर्ग हैरान थे। बचपन से लेकर आज तक ऐसा उन्होंने कभी नहीं देखा था कि इस तालाब का अक्षय कोष तिल भर के लिए भी घट जाए। अगम, रहस्यमय, अनेक क्रियाओं की रंगशाला और जीवंतता, गतिशीलता व शीतलता का अमृत-कुंड आज जैसे किसी श्मशान में परिवर्तित हो गया था। कल्याण सूख गया, इससे शायद बहुतों का जीवन अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुआ होगा लेकिन प्रत्यक्ष रूप से इससे जो सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ, उसका नाम था कोचाई मंडल।

कल्याण क्या सूखा जैसा उसके जीवन के सारे स्रोत ही सूख गए। कल्याण उसकी संजीवनी था, कर्म-स्थल था, ऊर्जा-स्रोत था और कुल जमा पूँजी था। अब जब वह नहीं रहा तो मानो उसके पास कुछ भी नहीं रहा जैसे वह उखड़ गया अपनी जड़ से हिल गया अपनी नींव से। उसकी दयनीयता तब और भी त्रासद बन गई जब उसके घरवाले तालाब का सूखना, अशुभ की जगह शुभ सूचक मानने लगे।

उसके बड़े लड़के निमाई ने कहा, "हमें खुश होना चाहिए कि इतने बड़े भूखंड का अब हम सही रूप में व्यावसायिक उपयोग कर सकेंगे। सार्वजनिक हित से जुड़े होने के कारण हम इसके वजूद को एकबारगी मिटाकर इसका रूपांतरण नहीं कर सकते थे। अब जब खुद ही सूख गया है तो हमें अब टोकनेवाला भी कोई न रहा। हमें अपने आप बहाना या मौका मिल गया कि इस कीमती भूखंड के सहारे अपनी कायापालट कर लें। हम इससे रातोंरात लाखों बना सकते हैं।"

कोचाई को पता है कि उसकी पत्नी राधामुनी भी इस मुद्दे पर अपने बेटे के पक्ष में हैं। पढ़ाई कर रहे उसके बेटे ने आज से कई साल पहले उसके पानी वाले परंपरागत व्यवसाय से घृणा का इज़हार करते हुए कहा था, "इस पेशे ने हमारे पूरे खानदान को बौना बनाकर गरीबी के घेरे में सिमटे रहने के लिए अभिशप्त कर दिया है। भला कोई मछली मारकर और नाव खेकर दो रोटी जुटाने से ज्यादा और क्या कर सकता है? मैं कोई सा भी दूसरा काम कर लूँगा, लेकिन पानी से जुड़ा कोई काम नहीं करूँगा। आखिर हम अपना भाग्य पानी में ही क्यों गलाएँ, धरती पर हम अपने लिए कोई मंजिल क्यों तलाश न करें?"

राधामुनी ने अपने बेटे का जोरदार समर्थन किया, "तुमने बिल्कुल ठीक फैसला किया है। मैं भी यही चाहती हूँ कि बाप की तरह पानी का प्रेत तुम लोगों पर न सवार हो। मुझे हमेशा लगा कि इस आदमी ने मुझसे नहीं पानी से शादी कर ली हैं। राह देखते-देखते मेरी आँखें थक जातीं मगर इस आदमी का मन पानी से नहीं भरता। इन्होंने जमीन और घर से ज्यादा अपना वक्त पानी में बिताया। मैं तो कुढ़ती रही इस पानी से जैसे वह मेरी सौत बन गया। मैंने बहुत पहले ठान लिया था कि अपने बेटों को खूब पढ़ाऊँगी और पानी के धंधे से जितना दूर रखना मुमकिन होगा, रखूँगी।"

निमाई ने अपने दिमागी घोड़े को जरा रफ़्तार से दौड़ाते हुए कहा, "माँ, पढ़ाई-लिखाई अगर हमें रास्ता बदलने में मदद कर दे तो अच्छा है, इसके बाद भी हमें तालाब में फँसी ज़मीनों का बाज़ार भाव के हिसाब से रिटर्न पाने के लिए पानी से अपना पिंड छुड़ाना ही होगा। पच्चीस बीघा का रकबा इस इलाके के लिए लाख की नहीं करोड़ की संपत्ति साबित होगा। चारों तरफ जिस तरह कालोनियाँ बसी हैं, उद्योगों के जाल बिछ रहे हैं, इसकी मुँहमाँगी कीमत वसूली जा सकती है।"

कोचाई को गुस्सा करना नहीं आता था और नाहीं उसे किसी से चोंच लड़ाने में कोई रुचि थी। वह संतभाव से ऐसी बातें सुन लेता था और कल क्या होनेवाला है, उसे नियति के भरोसे छोड़कर अपने काम में लग जाता था। उसने अपने दादा की लिखी हुई डायरी का एक पन्ना लाकर निमाई के हाथों में रख दिया। उसमें लिखा था, "तालाब की अहमियत रुपयों-पैसों से नहीं आँकी जा सकती। और अगर रुपयों से आँकी जाए तो उसके जरिए जो मानवीयता पर परोपकार हो रहा है, वह अरबों-खरबों से भी कहीं ज्यादा है। जब एक कुआँ बन जाता है या तालाब तो वह किसी की निजी संपत्ति नहीं रह जाता, वह सार्वजनिक हो जाता है।"

निमाई ने डायरी के उस पन्ने की चिंदी-चिंदी कर डाली।

राधामुनी ने कहा था, "मैं तो कब से यह चाहती रही कि इस तालाब को भरवाकर हम सिर्फ इसे बेच दें तो उसी से कई पीढ़ियों से जमी हमारी दरिद्रता छूमंतर हो जाए। लेकिन तुम्हारे इस बाप की जिद और पानी में बसे इनके प्राण को देखकर मैं कोई सख्त कदम उठाने के लायक न बन पाई और तुम लोगों के जवान होने का मैं इंतजार करती रही। अब देखो, ऊपरवाले का कमाल, उसने हमारी सुन ली और इसका सारा पानी अपने आप ही गायब हो गया।"

अपने बीवी-बच्चों के विजयी भाव को देखकर कोचाई जैसे किसी मूक चित्र में परिवर्तित हो गया।

कोचाई मंडल के जीवन में पानी ही पानी था। वह अपना समय ज़मीन पर कम और पानी पर ज़्यादा गुज़ारता था। वह अपने को पानी का पहरेदार कहता था और लोग उसे पानी का मेंढक कहते थे। पानी के अंदर या पानी के ऊपर कोई कारोबार चलाना हो तो कोचाई से उपयुक्त व्यक्ति दूसरा कोई नहीं हो सकता था। नदी में, तालाब में, समुद्र में कोई दुर्घटना हो जाए, कोचाई का झट बुलावा आ जाता। कहते हैं जो काम सेना के गोताखोरों से भी संभव नहीं हो पाता, उसे कोचाई कर डालता था। इस मामले में उसकी ख्याति काफी दूर-दूर तक थी। कोई बस नदी में पलट गई और कुछ लाशें बरामद नहीं हो सकी कोचाई को लगा दीजिए। किसी ने नदी में कूदकर आत्महत्या कर ली और उसकी लाश बहकर अदृश्य हो गईकोचाई के लिए यह कोई बड़ा मसला नहीं है। कहीं अचानक बाढ़ आ गई और पानी में फँसे लोगों को बाहर निकालना हैगरजती-उछलती जलधारा में किसी की हिम्मत नहीं पड़ रही कोचाई कमर में गमछा बांधकर पानी में कूद पड़ेगा। पानी के अंदर काफ़ी गहरे में किसी की कोई बहुमूल्य वस्तु गिर गईक़ोचाई पाताल में भी डुबकी लगाकर निकाल लेगा।

उसके बारे में यह किंवदंती प्रचलित हो गई थी कि पानी में उतरते ही उसकी ताकत बढ़ जाती है। पानी के अंदर वह ज्यादा देख सकता हैपानी के अंदर मीलोंमील तैर सकता हैपानी के अंदर वह जलचरों को सूँघ कर पता कर सकता हैउसकी देह से पानी का स्पर्श होते ही उसमें एक बिजली दौड़ जाती है।

कोचाई के बारे में उसके कुछ गाँववाले कहते थे कि इसे दरअसल किसी जलचर में जन्म लेना था, मगर गलती से आदमी (थलचर) में आ गया। उसके बारे में यह किस्सा भी प्रचलित था कि कोई जलपरी है जो कोचाई से प्यार करती है। ज्यों ही वह पानी में उतरता है वह जलपरी उस पर सवार हो जाती है और उसकी पूरी दैवीय शक्ति उसमें समा जाती हैं।

पानी को इस तरह साध लेनेवाला कोचाई कभी पानी रहित हो जाएगा, यह कोई नहीं जानता था। पानी ने कोचाई को दार्शनिक बना दिया था। वह कहा करता था कि पानी जिस तरह दुनिया भर के विकार और गंदगी साफ करता है, अगर कोई आठ-दस दिनों तक पानी के संपर्क में रह जाए चारों ओर पानी ही पानी, दूसरा कोई नहीं तो उसके मन का विकार भी धुल जाता है। पानी दया, करूणा, ममता और आत्मीयता का पर्याय हैवह आदमी को तरल, सरल और निश्छल बना देता है। पानी में सारे तत्व हैं, कोई चाहे तो सिर्फ पानी पीकर अपनी पूरी उम्र जी सकता है। बहुत सारे ऐसे जलचर हैं जो बिना खाए भी पानी में रहकर जी लेते हैं। पानी की जिसको आदत हो जाती है, वह पानी के बिना नहीं रह सकता। पानी से अलग होते ही वह प्राण त्याग देता हैं।

कोचाई को तालाब विरासत में मिला था। पच्चीस बीघे का लंबा-चौड़ा तालाब ठीक लोखट पहाड़ी के पार्श्व में स्थित था। बरसात के दिनों में पहाड़ी का पानी झरकर एक नाले में तब्दील हो जाता था। बरसात खत्म होने के बाद भी इस नाले में पानी का प्रवाह जारी रहता था। कोचाई ने अपने तालाब के जलस्तर को अधिकतम रखने के लिए ज़रूरत-ब -ज़रूरत नाले की दिशा अपनी ओर मोड़ लेने की व्यवस्था कर रखी थी। इस तालाब के अलावा उसके पास और कोई ज़मीन-जोत नहीं थी। इसी से उसकी आजीविका चलती थी और इसी से उसकी पहचान बनती थी। इस तालाब की गहराई के बारे में, कोचाई के पुरखों के पास हस्तांतरित होने के बारे में और इसके महात्म्य व गुणधर्मिता के बारे में कई तरह की दंत कथाएँ प्रचलित थीं।

कहते हैं यह तालाब जमाईकेला रियासत के राणा कौतुक विक्रम सिंह का था जिसे उन्होंने कोचाई के परदादा सुतारू मंडल की स्वामिभक्ति और तालाब की देखरेख के प्रति उसकी गहरी संलग्नता से प्रभावित होकर उसे बतौर बख्शीश दे दिया था। तालाब की गहराई के बारे में लोगों का अनुमान था कि यह पचास फ़ीट से भी ज़्यादा गहरा है। उसके तल के बारे में सबका कहना था कि वहाँ एक खास ऐसा केन्द्र है जहाँ कोई गलती से चला जाए तो फिर वापस नहीं आता। कुछ धर्मपरायण लोगों की ऐसी मान्यता थी कि पाताल लोक जाने का एक द्वार है इस तालाब के अन्दर, जहाँ पहुँचते ही उसे भीतर दाखिल कर लिया जाता है।

तालाब के पानी की तासीर की भी एक अलग व्याख्या थी। कहते हैं इसमें नियमित स्नान कर देह के किसी भी चर्मरोग से मुक्ति पाई जा सकती थी। कुछ लोग हफ़्ते या पखवारे इसमें एहतियात के तौर पर इसलिए भी स्नान करते थे कि उन्हें कोई चर्मरोग न हो। धीरे-धीरे लोगों ने तो यहाँ तक मानना शुरू कर दिया कि इसमें स्नान करने से किसी भी तरह की बीमारी से बचा जा सकता है। इसका यह महात्म्य दूर-दूर तक प्रचारित हो गया था जिससे उसमें लोगों के स्नान करने का ताँता कभी खत्म नहीं होता था। लोगों ने इसे कल्याण नाम से पुकारना शुरू कर दिया था।

पहाड़ियों से होकर आनेवाले पानी में संभव है कुछ जड़ी-बूटियों का औषध प्रभाव समा जाता हो। लोकश्रुति का स्वभाव तो प्राय: ऐसा होता ही है कि किसी छोटी चीज़ को बढ़ाते-बढ़ाते बहुत बड़ी बना दें। इस तालाब में आम आदमी की तो छोड़िए खुद राणा कौतुक विक्रम सिंह की हवेली से उनकी पत्नियाँ, बहनें और माँ तक सप्ताह में एक बार

स्नान करने ज़रूर आती थीं। इन्हें सुरक्षित स्नान कराने का ज़िम्मा सुतारू मंडल का होता था। जब ये शाही महिलाएँ तालाब के घाट पर आतीं थीं तो आम जनों की आमद-रफ़्त वर्जित कर दी जाती थी। कहते हैं इनमें कुछ रानियाँ तैरने की बहुत शौकीन थीं और वे देर तक और दूर तक तालाब में उन्मुक्त तैरती रहती थीं। एक अकेले सुतारू मंडल ही होते थे जो किनारे में खड़े होकर इनकी किसी भी आपात्कालीन मदद के लिए चीते की तरह सतर्क रहते थे। कहते हैं सुतारू से इन महिलाओं का अब ऐसा सौजन्य स्थापित हो गया था कि अब वे इनसे जरा भी शर्म, पर्दा और लिहाज़ नहीं करती थीं। सुतारू ने अपने को ऐसा वीतराग बना भी लिया था कि इन्हें किसी भी रूप में देख ले, उसमें कोई उत्तेजना जाग्रत नहीं होती थी। चाहती तो ये महिलाएँ राजमहल की चारदीवारी में ही तालाब खुदवा लेतीं, लेकिन वह औषधीय प्रभाव तो उसमें न आता। सुतारू के शायद इसी संयमित आचरण पर कृपालु होकर राणा ने बतौर इनाम उस यशस्वी तालाब कल्याण का उसे रक्षक और मालिक बना दिया था।

राणा का जब तक राज चला वे इस इलाके में जमे रहे और उनकी रसोई के लिए इसी तालाब से ताज़ी मछलियों की आपूर्ति होती रही। सुतारू मंडल ही इस आपूर्ति के प्रभारी रहे। जब रियासतों का अधिग्रहण होने लगा तो राणा अपनी हवेली और जायदाद अपने बराहिलों और गुमाश्तों को सुपुर्द कर सपरिवार भुवनेश्वर में स्थानांतरित हो गए।

कल्याण सुतारू मंडल से होते हुए अब उनकी तीसरी पीढ़ी कोचाई मंडल के जिम्मे आ गया। कोचाई को अपने दादा की ज़्यादा याद नहीं है लेकिन अपने पिता को तो वह अब भी हर पल अपने आसपास ही महसूस करता रहता है। जब से उसने होश संभाला अपने पिता की उँगली थामे अपने को इस तालाब में ही पाया। पिता उसे तैराना सिखा रहे हैंगहरे पानी में गोता लगाना सिखा रहे हैंनाव खेना सिखा रहे हैंजाल डालना सिखा रहे हैंबिना जाल डाले भी बड़ी मछलियों को पकड़ लेने की कला सिखा रहे हैंमछलियों का जीरा बनाने का गुर सिखा रहे हैंइनके लिए चारा बनाने का इल्म बता रहे हैं।

उन्होंने इस क्षेत्र के तेज़ी से हो रहे शहरीकरण के कारण तालाब के अस्तित्व पर बढ़ते दबाव को भाँपते हुए कहा था, "देखो बेटे, तालाब सिर्फ पानी का खजाना भर नहीं होताबल्कि यह हमारी संस्कृति का एक अंग है। यह व्यक्ति विशेष के स्वामित्व के अधीन होकर भी एक सार्वजनिक धरोहर है, जिसके इस्तेमाल का हक आसपास की पूरी आबादी को है। जैसे कोई अपनी ही ज़मीन पर गाछ लगा दे तो वह गाछ सिर्फ उसी का नहीं रह जाता। उसकी छाया और नीचे गिरे हुए फल पर हर राहगीर का हक बन जाता है। उसकी शाखाओं पर हजारों चिड़ियों-चुरगनों को बसेरा डालने का हक बन जाता है। तालाब के होने से आसपास के बहुत बड़े क्षेत्रफल में जल-स्तर नियंत्रित रहता है। खेती की जमीनों में नमी बनी रहती है। आसपास के तापमान में एक आर्द्रता रहती हैलोगों को ताजी मछलियों की आपूर्ति हो पाती हैएक साथ नहाने-धोने से सामाजिकता और सहअस्तित्व की भावना का विकास होता है।"

राजा ने सुतारू से कहा था, "इस तालाब पर तुम्हारा स्वामित्व जरूर होगा लेकिन इसके उपयोग पर सबको बराबर का अधिकार होगा। हक नहीं होगा तो तालाब का कुछ बिगाड़ने और नष्ट करने का।"

कोचाई के दादा और पिता ने इस निर्देश का पूरा खयाल रखाकभी इस तरह का रौब नहीं दिखाया कि तालाब उसकी निजी जायदाद है। लोगों द्वारा उसके इस्तेमाल पर कभी कोई परेशानी या अड़चन खड़ी नहीं की। उल्टे सबको आकर्षित करने के लिए रख-रखाव व साफ-सफाई पर पूरा ध्यान दिया। सिर्फ मछली मारने तथा इसमें नौकायन करने का हक अपने पास रखा।

कोचाई पिछले कुछ अर्से से देख रहा था कि लोखट पहाड़ी से निकलकर आनेवाला नाला क्षीण से क्षीणतर होता जा रहा है। पहाड़ी के पार्श्व में और तालाब के आसपास तेज़ी से फैल रहे कांक्रीट के जंगल, उसमें बस रहे निष्ठुर लोग और उनकी आक्रामक आपाधापी से पहाड़ी के ऊपर के पेड़ यानी प्राकृतिक जंगल तेज़ी से कटकर गायब होने लगे थे। पहाड़ अब बिल्कुल छीन-झपटकर हरण कर लिए गए चीर के उपरांत लुटा-पिटा सा नंगा दिखने लगा था और उससे निकलकर आनेवाला नाला जिस नदी में गिरता था उस नदी का पाट भी सिकुड़कर मानो एक पतली रेखा में बदल गया था। नदी नदी नहीं जैसे किसी विधवा की उजड़ी माँग हो गई थी। कोचाई को यह पूर्वाभास हो गया था कि कोई विपत्ति सन्निकट है, लेकिन इतनी सन्निकट है, ऐसा उसने नहीं सोचा था। पर्यावरण के महाविनाश का असर इतना जल्दी दिखाई पड़ने लगेगा, इसकी कल्पना शायद किसी को नहीं थी।

कल्याण के सूखते जाने से बर्बादी में लुत्फ उठानेवाले कुछ राक्षसी वृत्ति के लोग तालाब के साथ जुड़ी रहस्यमय दंतकथाओं के अनावृत्त होने के प्रति उत्सुक हो उठे थे। वे यह जानने को व्यग्र थे कि इसमें रहनेवाली जलपरी का क्या होगा और वह पानी के बिना मरकर कैसी दिखेगी! निचली सतह पर स्थित उस द्वार का क्या होगा जो पाताल लोक में जाता है! उन बड़ी मछलियों और जलचरों का क्या होगा जिनकी विशाल आकृति के बारे में एक से एक किस्से प्रचलित है!

कल्याण सूखता जा रहा था और कोचाई मंडल का मौन बर्फ के टीले की तरह जमता हुआ एक उदास टापू में बदलता जा रहा था। ठीक इसके विपरीत उसके घर में चहल-पहल बढ़ गई थी। कई लोग कार से और जीप से उसके बड़े बेटे राधामुनी से मिलने के लिए आने लगे थे।

कोचाई ने उसकी मंशा ताड़ ली थी। उसने प्रतिरोध किए बिना एक दिन अपना इरादा जता दिया, "जब तक मैं कायम हूँ, तालाब की ज़मीन पर दूसरा कोई काम नहीं होगा। मुझे विश्वास है कि लोखट पहाड़ी का नाला फिर से जीवित होगा। मैं पहाड़ पर गाछ लगाऊँगा और वहाँ फिर हरा-भरा एक जंगल बसेगा।"

निमाई और राधामुनी एक-दूसरे का मुँह देखने लगे, मानो वे पूछ रहे हों कि इस आदमी के माथे का पेंच ढीला तो नहीं हो गया? दोनों में से किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। वे गुपचुप रूप से एक मंत्रणा करने लगे।

कोचाई कल्याण की परिधि पर स्थित किसी गाछ के नीच जाकर बैठ जातागुमसुमशोकाकुल और आर्तनाद करता हुआ। सामने कल्याण तिल-तिल दम तोड़ रहे किसी प्रियजन की तरह कराहता हुआ बिछा होता। तट पर आकर कुछ प्यासे जानवर अपनी अबोध आँखों से शून्य को निहारते और फिर वापस हो जाते। जल-विहार करनेवाले पक्षी गाछ की फुनगी से ही दुर्दशा निहारकर स्यापा कर लेते। कुछ बड़ी मछलियाँ, जिनके लिए पेंदी में बचा थोड़ा सा पानी कम पड़ रहा था, छटपटाते-तड़फड़ाते दिख जाते। बस्ती के कुछ लोगों के लिए यह प्रलय एक उत्सव बन गया था और वे एकांत मिलते ही इन मछलियों का शिकार कर अपनी रसोई को चटखारेदार बना लेते।

कल्याण जब पानी से भरा होता तो इसमें एक रौनक समाई होती और इससे एक जीवन राग मुखरित होता रहता। कुछ लोग नहाते होते और पूरब तट पर स्थित शिवालय में जल चढ़ाते होते। छोटे घरों की गृहिणियाँ बतियाती होतीं,

बर्तन-वासन धोती रहतीं और बच्चों को रगड़-रगड़कर उन पर भर-भर लोटा पानी उलीच रही होतीं। कुछ लड़के तैरने का लुत्फ उठाते होते और कुछ लोग इस तट से उस तट नौका-विहार का मजा ले रहे होते। गैरआबादी वाले छोर पर बचे कुछ खाली खेत में सब्जी-भाजी उगानेवाले किसान पटवन के लिए लाठा-कुंडी से पानी निकाल रहे होते। मछलियाँ उन्मुक्त नाद करती हुई तैर रही होतीं। कोचाई द्वारा नियुक्त तीन-चार मछुआरे जाल फैलाए हुए होते।

अब आय का कोई नियमित ज़रिया नहीं रह गया था। कोचाई चिंतित था लेकिन घरवाले जरा सा भी परेशान नहीं थे। उलटे निमाई और राधामुनी पहले से ज्यादा निश्चिंत दिख रहे थे। निचली कक्षाओं में पढ़नेवाला उसका छोटा बेटा और बेटी भी पूर्व की तरह ही अच्छे रख-रखाव में जी रहे थे और स्कूल जा रहे थे।

एक दिन एक साहबनुमा व्यक्ति उससे मिलने आया। उसने अपने को एक शिपिंग कंपनी का अधिकार बताते हुए कहा, "मेरा नाम प्रदीप डोगरे है। मुझे आपकी सेवा चाहिए। मेरा एक जहाज बंगाल की खाड़ी में डूब गया है। उसमें सोने की ईटों के पाँच बक्से लदे थे, जिसकी कीमत ५० करोड़ से भी ज़्यादा है। कई गोताखोर हार गए मगर कुछ भी ढूँढ़ने में कामयाब नहीं हुए। आपके बारे में हमें जानकारी मिली। सुना है कि पानी को आपने पूरी तरह साध लिया हैदिल से आप जो चाह लेते हैं, वह पूरा हो जाता हैपानी आप से दगा नहीं कर सकता। आप अगर इस चुनौती को स्वीकार कर लें तो आप जो भी कीमत चाहें, हम देने को तैयार हैं।"

कोचाई ने जायजा लिया कि राधामुनी, निमाई और उसके अन्य बच्चे भी उस मुद्रा में उन्हें देख रहे हैं जिसमें उनकी इच्छा है कि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए।

उसकी ठिठक को देखते हुए राधामुनी ने कहा, "डोगरे साहब ठीक ही कह रहे हैं। यह आपके मन के लायक काम है। यहाँ आप नाहक घुट रहे हैं। चले जाइएगा तो जी बहल जाएगा। कुछ कमाई भी हो जाएगी, घर चलाने के लिए पैसा भी तो चाहिए ही।"

कोचाई को लगा कि राधामुनी ठीक ही कह रही है। तालाब को देख-देखकर उसका दुख असह्य होता जा रहा है। पानी में डुबकी लगाए हुए भी महीनों हो गए। इसके बिना लग रहा था जैसे देह के सारे सेल चार्ज रहित हो गए हैं। उसने हामी भर दी। डोगरे साहब ने झट लिखकर एक लाख रुपए का चेक सामने कर दिया। कोचाई ठगा रह गया, उसकी ऐसी कीमत तो आज तक किसी ने नहीं लगाई।

कोचाई को लेकर डोगरे साहब चला गया। उसे कथित शिपिंग कंपनी के मुख्यालय स्थित शहर में भेज दिया गया। कंपनी के कुछ कर्मचारी उसे बोट के जरिए समुद्र में ले जाते। वह गोताखोरों वाली ड्रेस पहनकर मुँह में ऑक्सीजन मास्क लगाता और उस स्थल पर समुद्र में कूद जाता, जहाँ वे जहाज डूबने की आशंका जाहिर करते। कोसाई को पहले भी दो-तीन बार समुद्र में छोटा गोता लगाने का मौका मिल चुका था। इस बार उसे लगभग डेढ़ महीने रोका गया, जिसमें उसने दस-बारह बार लंबे गोते लगाए। गहराई में जाकर समुद्र की दुनिया उसे अचम्भित कर देती थी। अजीब-अजीब तरह के रंग-बिरंगे जीव-जन्तु, पेड़-पौधे और पहाड़ जैसे उसे अपनी ओर खींचने लगते थे। पता नहीं

क्यों उसे लगता था कि बाहरी दुनिया से यह अंदरूनी दुनिया कहीं ज्यादा खूबसूरत और सुरक्षित है। उसकी इच्छा होती कि काश वह इसी दुनिया में रहने लायक बन जाता और इन्हीं जलचरों के साथ तैरता रहता समुद्री अंतस्थल की खाइयों और गुफाओं में। उसने बहुत ढूँढ़ा पर उसे जहाज का कोई अवशेष कहीं दिखाई नहीं पड़ा।

डोगरे साहब ने एक दिन उसे फिर दर्शन दिया और कहा, "मंडल जी, कल आप मेरे साथ लौट जाएँगे अपने शहर।"

कोचाई ने अफसोस जताते हुए कहा, "मुझे खेद है साहब कि मैं इतना-इतना गोता लगाकर भी कुछ ढूँढ़ न सका।"

उसने कहा, "नहीं मंडल, आपका गोता लगाना व्यर्थ नहीं गया है। आपके गोता लगाने से हमें जो हासिल करना था, वह हमने कर लिया है।"

कोचाई उसका मुँह देखता रह गया।

घर वापस लौटने लगा तो उसका मन फिर दुखी हो गया। कल्याण अब तक पूरी तरह सूख गया होगा। उसने मन ही मन तय किया कि बरसात आते ही वह लोखट पहाड़ी पर पेड़ लगाना शुरू कर देगा। इस काम में वह अपनी पूरी ज़िंदगी लगा देगा और इससे निकलनेवाले नाले को फिर से जीवित करके छोड़ेगा। तालाब की पूर्व की स्थिति बहाल किए बिना, वह एक तिल चैन की साँस नहीं लेगा।

शहर पहुँचते ही कोचाई के पाँव अनायास तालाब के रास्ते पर ही बढ़ गए। उसने देखा कि उस रास्ते पर दर्जनों डम्फर, डोज़र और ट्रक आवाज़ाही कर रहे हैं। उसका माथा ठनक गया। कल्याण के पास पहुँचा तो वहाँ की हालत देखकर उसकी आँखें फटी की फटी रह गईं। एक किनारे बड़ा-सा बोर्ड लगा था - "साइट ऑफ डोगरे बिल्डर्स एंड कॉन्ट्रैक्टर्स" कल्याण आसपास के उद्योगों के कचड़े और खेतों की मिट्टी से तोपा जा रहा था। उसका आधा हिस्सा लगभग भरा जा चुका था। क्षण भर के लिए प्रतीत हुआ कि कल्याण को नहीं मानो जीते जी उसे ही दफ़नाया जा रहा है। डोगरे ने जो कहा था, उसका अर्थ अब स्पष्ट होने लगा। उससे गोता लगवाकर उसने वाकई अपना लक्ष्य हासिल कर लिया।

उसकी आँखें आँसुओं से डबडबा गईलगा कि समुद्र में गोता लगाकर वह माल ढूँढने नहीं बल्कि अपना सर्वस्व डुबोने चला गया था।

(२४ अक्तूबर २००४ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

छोटा किसान

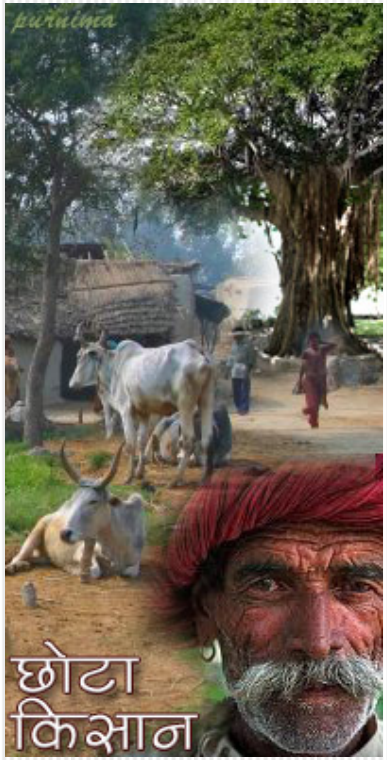

दाहू महतो अपने खेत की मेंड़ पर गुमसुम से खड़े हैं।

करीब सौ डेग पर एक विशाल बूढ़ा बरगद खड़ा है जो इस तरह झकझोरा जा रहा है मानो आज जड़ से उखाड़ दिया जायेगा। साँय-साँय बेढंगी बयार आड़ी-तिरछी बहे जा रही है, जैसे एक साथ पुरवैया, पछिया, उतरंगा और दखिनाहा चारों हवाएँ आपस में धक्का-मुक्की कर रही हों। प्रकृति जैसे अनुशासनहीन हो गयी हो, हवाएँ गर्म इतनी जैसे किसी भट्ठी से निकलकर आ रही हो। भादो महीने में यह हाल! इस साल फिर सुखाड़ तय है। हवा के शोर में उनके बेटों के प्रस्ताव चीखते से उभरने लगे हैं उनके मगज में।

"अब खेती-बाड़ी में हम छोटे किसानों के लिए कुछ नहीं रखा है बाऊ.....घर-खेत बेचकर हमें शहर जाना ही होगा। सोचने-विचारने में हमने बहुत टैम बर्बाद कर दिया।``

उनकी घरवाली भी समर्थन कर रही है बेटों का, "हाँ जी, भले कहते हैं ये लोग। अपने मँझले भाई के बेटों से तो सबक लीजिए।``

"हद हो गयी.....सबक लें हम उनसे? इस्क्रीम और फुचका ही तो बेचते हैं तीनों भाई.....कोई बहुत बड़ी साहूकारी तो नहीं करते।``

"कुछ भी बेचते हों, खेत खरीद-खरीद कर बड़े जोतदार तो बन गये न आज!` अब इस सच्चाई से तो इंकार नहीं किया जा सकता।

बड़का भाई लाछो महतो के हिस्से की सारी जमीनें धीरे-धीरे बाले बाबू ने ही खरीद लीं। तय है कि कचहरी में किरानीगिरी करके उन्होंने इतना नहीं कमाया है। उनके बेटे जब से राउरकेला में आइसक्रीम और फुचका बेचने लगे तब से ही उनकी यह कायापलट होने लगी। लाछो महतो गाँजा-भाँग और ताड़ी की लत के पीछे खेत बेचते चले गये और बाले बाबू खरीदते चले गये। लोग बताते हैं कि इनकी इस लत के पीछे कोई गहरा घाव पैवस्त है। उन्होंेने अपने दोनों छोटे भाइयों की निष्कंटक परवरिश के लिए खुद का ब्याह

तक नहीं रचाया। शायद अपने निजी मोह-माया में फँसकर वे कोई दुराव की स्थिति नहीं लाना चाहते थे। उन्हें भरोसा था कि बाले पढ़-लिखकर कोई काबिल आदमी बन जायेगा तो खानदान की माली नस्ल सुधर जायेगी और इसके भरोसे उनका बेड़ा भी आराम से पार हो जायेगा। मगर बाले बाबू ज्योंही बाल-बच्चेदार हुए, उन्हें लगा कि अपनी कमाई अपने ही बाल-बच्चों में सीमित रहती तो वे ज्यादा ठाट-बाट बहाल कर सकते। बस बंटवारा हो गया।

जिस मेंड़ पर खड़े हैं वे उसका बगलवाला खेता लाछो महतो का था, जो अब बाले बाबू का है। सुखाड़ की हालत में भी ट्यूबवेल से पानी आ रहा है। हल जोत कर कादो तैयार कर रहा है उनका मजूर। कल तक धानरोपनी भी हो जायेगी। इनके लिए कोई सुखाड़ नहीं.....कोई मारा नहीं.....कोई अकाल नहीं।

ठीक ही कहते हैं उनके बेटे, आजकल छोटे किसानों के लिए खेती करना माफिक नहीं रह गया है। जो बड़े जोतदार हैं, उनके पास पूँजी है, उनके पास ट्यूबवेल है, खाद-मसाला देने की कूबत है। बिना खाद-दवाई के तो फसल अच्छी उपजती ही नहीं एकदम। पहले ऐसा नहीं था। माल-मवेशियों के गोबर और घर का कूड़ा-कर्कट ही काफी होता था। किसी छिड़काव की भी जरूरत नहीं होती थी। मानसून ठीक समय पर आ जाता था। इधर कई वर्षों से तो समय पर भरपूर वर्षा होती ही नहीं है, होती है तो असमय हो जाती है और खूब हो जाती है, जिससे फायदे की जगह नुकसान ही नुकसान हो उठता है।

ये लगातार तीसरा साल है कि जीविका का आधार धान की मुख्य फसल मारी जाने वाली है। रबी की फसल गेहूँ-चना आदि होगी तो बमुश्किल चार महीने खरची चलेगी। फिर ड्योढ़िया-सवाई में अनाज कर्ज लेना होगा। या तो तुलसी साव से या फिर अपने मँझले भाई साहेब बाले बाबू से। सूद की इतनी बड़ी दर, नौ-दस महीने में एक के डेढ़, पर रोक लगाने वाला कोई कानून नहीं.....कोई सरकार नहीं.....कोई हाकिम नहीं। रो-गाकर जो मड़ुआ-मकई, गेहूँ-चना होता है, उसमें से आधा कर्ज भरपाई करने में हर साल निकल जाता है। यह चक्र लगातार चलता रहता है।

आलू और करेले की खेती से जो थोड़ा-मोड़ा नगद हासिल होता है, वह कपड़े-लत्ते, नमक-मसाले और पर्व-त्योहार में ही समा जाता है। पेट चलाने के अलावा अगर कोई दूसरा बड़ा काम आ गया और उसे टालना किसी भी तरह संभव न हुआ तो खेत रेहन रखने के सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं। खेेत जो एक बार रेहन रखा गया, उसकी मुक्ति का फिर कोई रास्ता नहीं। मुँदरी की शादी में उन्हें दस कट्ठा बेचना पड़ा। पिछले साल एक बैल बुढ़ा गया तो दो कट्ठा रेहन रखना पड़ा। इसी साल बड़कू की टाँग की हड्डी छिटक गयी तो एक कट्ठा हटाना पड़ा।

दाहू महतो को आठ साल से खूनी बबासीर है.....पर वे टालते चले जा रहे हैं। दर्जनों लीटर खून बहा चुके होंगे बेचारे। देह इकहरी हो गयी है एकदम। ज्यादातर मड़ुआ-मकई और बाजरे-ज्वार की रोटी ही नसीब में आती है। शौच इतना कड़ा होता है कि खून रोकते नहीं रुकता। अब कुल दो ही बीघा जमीन बची है। बड़कू बराबर कहने लगा है, "एकाध कट्ठा बेचकर आप अपना ऑपरेशन करा लीजिये बाऊ।``

दाहू महतो मटिया देते हैं, "अरे अभी ठीक है बेटा। चलने दो जैसा चल रहा है। ब्याधि तो कुछ न कुछ रोज घेरती रहेगी....आखिर कितना बेचते रहेंगे खेत!``

बात वाजिब है.....उनकी दोनों आँखें भी मोतियाबिंद की चपेट में आ गयी हैं। महज एक आँख से वे कामचलाऊ देख पाते हैं। मेंड़ पर खड़े-खड़े वे ज्यादा दूर तक निहार तो नहीं पा रहे, पर उनके कानों में आसपास चलनेवाली डीजल पंपसेट की झकझक-फटफट की ध्वनि प्रवेश कर रही है। गाँव में सात किसान हैं पंप वाले, जिन्हें वर्षा होने की काई खास परवाह नहीं। इनके पास ट्यूबवेल का पानी है, परन्तु आँख में पानी नहीं है। छोटे किसानों पर इनकी कोई मुरौव्वत नहीं। उल्टे चाहते हैं ये लोग कि छोटे और भी कर्ज में डूब जाएँ और अपने खेत बेचते चले जाएँ।

बाले बाबू उनके सहोदर भाई हैं, फिर भी कोई रहमोकरम नहीं। कहने से कहेंगे और कई बार कहा भी है, "अपने ही खेतों को पटाना पार नहीं लगता, तुम्हें पानी कहाँ से दें। जिसे डीजल खरीदना पड़ता है, उसे ही मालूम है पानी का मोल। बिजली रहती तो बात और थी।``

एक समय था कि बड़े जोर-शोर से यहाँ बिजली लायी गयी। युद्ध स्तर पर खंभे गाड़े गये.....तार बाँधे गये। एक-डेढ़ साल तक बिजली रही भी...एक सरकारी ट्यूबवेल भी गाड़ा गया। पर सब अकारथ। एक बार बिजली जो नदारद हुई तो आज तक बहुरकर नहीं आयी। तार चोरों द्वारा कबके काट लिये गये...अब खंभे बिजूके की तरह खड़े हैं।

कहते हैं बिजली ज्यादातर शहर में ही दी जा रही है। बाबू-भैयन के ऐश-मौज के लिए.....कल-कारखाने के चलते रहने के लिए। दाहू महतो को इस समझ पर बड़ी झल्लाहट होती है। हाकिम-हुक्काम यह क्यों नहीं सोचता कि भूखे भजन न होत गोपाला। जब पैदावार नहीं होगी तो ऐश-मौज क्या लोग खाक करेंगे। अन्न के बदले क्या सीमेंट, लोहे, कपड़े और प्लास्टिक खाएँगे?

उनका बड़कू कहता है, "बाऊजी, हमारे पास खेत-घर और मवेशी को लेकर ढाई-तीन लाख की सम्पति है। फिर भी हम कर्ज में डूबे हुए फटेहाल हैं। हमें छह महीने भूखे-सूखे चलाने पड़ते हैं। चलिये, शहर में आपको दिखाते हैं - सिर्फ पचास-साठ हजार की पूँजी लगाकर फुचकावाले, पानवाले, कुल्फीवाले, पकौड़ीवाले हमसे बहुत बढ़िया गुजर-बसर कर लेते हैं। फिर हम क्यों खामखा माटी से अपनी हाड़ तुड़वाते रहें?``

दाहू महतो ने समझाने की कोशिश की, "अगर तुम्हारी तरह सभी खेतिहर मजूर किसान सोचने लग जाएँ तब तो बस खेती की छुट्टी ही हो जायेगी।``

"खेती की छुट्टी हो जाये तो हो जाये.....यह सोचना हमारा काम नहीं है, बाऊ। जो हाकिम-हुक्काम हैं, उन्हें इसका इल्म नहीं तो हमें क्यों हो? जिनके पास खेत है, वे खेती नहीं करते और जिनके पास खेत नहीं है, वे खेती कर रहे हैं। दूसरों के खेत में हम अपना करम कूटकर उपज का आधा हिस्सा उन्हें फोकट में दे रहे हैं। कौन देखनेवाला है इस अँधेरगर्दी को? कोई भी नहीं। हमें भी सिर्फ अपना देखना है। मारवाड़ियों को देखिये, पूरे देश में फैलकर धंधा कर रहे हैं और क्या ठाट-बाट की जिंदगी बसर कर रहे हैं। उनके पास खेत होने की जरूरत भी क्या है? अपने ही गाँव में कितने लोग तो हैं जिनके पास खेत नहीं है और वे खेती नहीं करते। फिर भी हमसे लाख गुना अच्छा हैं कि नहीं?``

बड़कू की तजबीज को दाहू महतो काट नहीं पाते हैं। गाँव में ही ये सारे मिसाल हैं - हरेशर भागकर कलकत्ता चला गया। वहाँ वह चप्पल फैक्टरी में चतड़ा छीलते-छीलते

और सुलेशन लगाते-लगाते बन गया चप्पल मिस्त्री। दो हजार रुपया महीना भेजता है घर में। सुखी राम मयूरभंज चला गया। किसी दारू भट्ठी में काम कर रहा है। परिवार खूब बढ़िया खा-पहन रहा है। लुच्चो साव गया में गोलगप्पा का ठेला लगाता है.....चर्चा है कि अब वह वहाँ मेनरोड में कोई दुकान लेनेवाला है। मुसो मिस्त्री धनबाद में कारपेंटरी करता है। कट्ठा-कट्ठा करके उसने दो बीघा जमीन खरीद ली। सोबराती मियाँ विजयवाड़ा में पता नहीं क्या टायर की दुकान चलाने लगा है, गाँव में तो शानदार मकान बन ही गया, बिहारशरीफ में भी एक किता मकान बना लिया है। हर साल एकाध बीघा जमीन भी किन ही लेता है। झुन्नू लोहार नवादा के ही किसी लेथशॉप में झाड़ू लगा-लगाकर काम सीख लिया, अभी बोकारो स्टील में काम कर रहा है। इस तरह के अनेकों प्रमाण हैं आँख के सामने। सचमुच इनकी तुलना में देखें तो सबसे खराब हालत खेतिहर किसान की ही है। खेत जैसे उनके पैर की बेड़ी बन गये हैं।

दाहू महतो सब कुछ देखते-गुनते हुए भी अपने बेटों को सांत्वना देना चाहते हैं, "देखो बेटे, तुमलोग अब मेरी पीठ पर सहारा देने के लिए तैयार हो गये हो। बँटाई पर खेत लगानेवाले इस गाँव में बहुत हैं। हम अपनी हालत अब सुधार लेंगे।``

"बँटाई करके क्या खाक सुधार लेंगे? अपने ही खेत को आबाद करके जरा दिखा तो दीजिये हमें। आज जबकि मौसम का कोई माई-बाप नहीं है.....जमीन की उर्वरा शक्ति की कोई नाप-जोख नहीं है.....खाद और उन्नत बीज खरीदने की हमें औकात नहीं है, तो फिर क्या खाकर करेंगे खेती?`` बड़कू किसी भूखे बैल की तरह पगहा तुड़ा बैठा मानो। "भाई ठीक कहता है बाऊ। अब हम दूसरों की जमीन में अपनी देह गलाकर एक ही जगह गोल-गोल नहीं घूमना चाहते। वही सूखा.....वही मारा.....वही करजा.....वही भुखमरी। जब आप बहुत समंगगर थे तो की तो थी बँटाई.....कितना जमा किया आपने.....कितना जाल-माल बढ़ाया?`` छोटकू ने भी अपने तेवर की तुर्शी दिखा दी।

दाहू महतो के पास दोनों का कोई जवाब नहीं है। उन्हें मानना पड़ जाता है कि जमाने के अटपटेपन ने उनके बेटों को उनसे ज्यादा अक्लमंद बना दिया है। मगर वे क्या करें? गाँव की सादगी-सरलता में जीने के अभ्यस्त.....पुरखों की माटी से जुड़ाव....गाँवावासियों से हित-मीत के रिश्ते....अमराई, तड़बन्ना, महुआरी आदि के प्रति रागात्मकता.....इस उम्र में वे इन सबको बिसराना नहीं चाहते। हल जोतते हुए ताजी मिट्टी से जो एक सोंधी खुशबू निकलती है, उससे छाती में मानो एक नयी संजीवनी मिल जाती है। इसका बयान वे अपने बेटों से कैसे करें?

धान, गेहूँ, मकई, मड़ुआ आदि में जब बाली निकल रही होती.....सरसों, रहड़, ज्वार, मकई जब फुला रहे होते तो इन्हें देखने के सुख की भला क्या कहीं बराबरी हो सकती है? पौधों का अँकुराना.....पत्तों का निकलना....धीरे-धीरे इनका बड़ा होना....इन्हें कोड़ना, पटाना, निकाना आदि सभी किसानी धर्म में एक बच्चे को पालने, परवरिश करने जैसी माँ वाली परितृप्ति क्या शहर में दूसरे पेशे में मयस्सर हो सकती है? फसलें जितनी अवस्थाओं से गुजरती हैं, वे सब मानो एक करिश्मा होता है....एक कुदरती जादू। विरासत में उन्हें यही पाठ मिला है कि किसानी कोई धंधा नहीं बल्कि एक शुद्ध-सात्विक सेवा है प्रकृति की, ठीक किसी इबादत जैसी। इसमें जो स्वाभिमान है....खुद्दारी है.....सृजन का परितोष है, वह किसी बड़े से बड़ा पेशा में भी मुमकिन नहीं। बेटों को कैसे समझाएँ वे?

अपने तजुर्बे की गठरी से वे फिर निकालते हैं एक जवाब, "देख बड़कू ! हमें यह नहीं देखना है कि इस गाँव में हमसे कितने लोग सुखी-संपन्न हैं। हमें अगर देखना ही है तो यह देखना है कि हमसे भी लुटे-पिटे बहुत सारे लोग हैं यहाँ। हमारे पास तो फिर भी खरची चलाने के लिए चार-पाँच महीने का अन्न हो जाता है, लेकिन उन्हें भी तो देखो

जो एकदम भूमिहीन हैं, जिनकी सारी जमा पूँजी बस उनकी देह है.....उनकी मेहनत है। मुसहरी में बचारे मुसहरों, पासियों, दुसाधों और चमारों में से किसी को यह नहीं मालूम कि कल वे क्या खाएँगे? देखते ही होगे कि वे तब भी कितने खुश और निश्चिंत रह लेते हैं।``

बड़कू-छोटकू दोनों के चेहरों पर इस वक्तव्य के प्रति एक हिकारत उभर आती है। छोटकू खीजते हुए कहता है, "जिस मुश्किल समय से हमलोग गुजर रहे हैं, कल हमारी हालत भी इन्हीं की तरह हो जानेवाली है। भूमिहीन होने की तरफ क्या हम तेजी से बढ़ नहीं रहे?``

दाहू महतो का तरकश फिर खाली हो गया। उन्होंने देखा कि बेटों के चेहरों पर कोई एक निर्णय बहुत ठोस रूप लेता जा रहा है। वे अपने खेतों का निरर्थक भ्रमण कर मायूस लौटने लगे। रास्ते में तुलसी साव से मुलाकात हो गयी। टोक बैठा। यह इसकी बड़ी बुरी आदत है, जहाँ भी भेंटा जाता है, तगादा जरूर कर देता है।

दाहू महतो ने कोई जवाब नहीं दिया, आगे बढ़ गये। दस कदम चलकर अगली गली में घुसे होंगे कि बाले बाबू मिल गये। उन्हें आशंका हुई कि कहीं ये महाशय भी तगादा न ठोक दें। परिस्थिति जब विपरीत हो जाती है तो ऐसे काईयाँ महाजन ज्यादा ही व्याकुल हो जाते हैं। दस-बारह मन गल्ला इनका भी निकलेगा। दाएँ-बाएँ निगाह फेंककर उन्होंने कन्नी काट लेनी चाही कि आखिर वे पुकार ही लिये गये। "क्या दाहू, तुम्हारा बड़कू कह रहा था कि तुम खेत बेचनेवाले हो? तुम शहर जा रहे हो, तुम्हें कुछ पूँजी चाहिए।``
"अभी हम इस बारे में कुछ तय नहीं कर पाये हैं।``

"देखना, बेचोगे तो मुझे ही दे देना। अपनी जमीन अपने ही आदमी के पास रहे, कोई गैर क्यों लेगा।``

हुँह ! अपना आदमी ! दाहू महतो का मुँह घृणा से फैल गया। गाँव से उजाड़ने में जो तत्परता दिखा रहा है, वह खुद को अपना आदमी कह रहा है!

सामने थोड़ी ही दूर पर एक आदमी रास्ते में पड़ा हुआ दिखाई पड़ रहा था। दाहू महतो वहाँ लपककर पहुँच गये। लाछो भैया ताड़ी के नशे में धुत होकर ओघड़ाये हुए थे। बगल में ही कै भी की हुई थी। बाले बाबू अभी-अभी यहीं से गुजरे। इन्हें देखकर उनके चेहरे पर कोई शिकन तक नहीं आयी। जैसे यह गिरा हुआ आदमी सहोदर तो दूर, बल्कि आदमी भी नहीं कोई मरा हुआ कुत्ता हो।

दाहू पूरी निष्ठा से सेवा-सुश्रुषा में भिड़ गये। ताड़ी इन्हें मिल गयी....मतलब घर का फिर कोई सामान आज इन्होंने बेच दिया। खाली पेट में ही ताड़ी चढ़ा ली होगी। कै तो होनी ही थी। तीन-चार दिनों से मुँह फुलाये बैठे थे। रोटी देने गये तो फटकार कर भगा दिया, "जाओ, तुम्हारे घर का अब हमें पानी तक नहीं पीना है। खबरदार जो आज से तुमने मेरी देहरी लाँघी।``

दाहू जानते हैं कि ऐसा वे दर्जनों बार कह चुके हैं। न इन्हें बेप्रीत होकर लड़ते देर.....न इन्हें सगे की तरह मिलते देर। छोटी-छोटी बात पर भड़ककर भिड़ जाने का स्वभाव है इनका। लगे हुए घाव की कोई टीस है जो उनके गुस्से के रूप में झाँक उठती है। घरवाली अगर उनके पैबंद पर पैबंद चढ़े जर्जर गमछे या धोती या कुरते को सिलने में असमर्थता दिखा देगी तो बस भभक पड़ेंगे, ``हाँ-हाँ, तुम्हारा सीने का मन नहीं है, यह मालूम है हमें। तुम क्या समझती हो, तुम्हीं एक सुघड़ जनानी हो इस गाँव में? तेरे ऐसी-ऐसी तो मड़ुआ-खेसाड़ी का चार बर बिकती चलती है।``

घरवाली भी एकदम चिढ़ जायेगी। सारा गुस्सा अब दाहू महतो पर उतरेगा।

"खबरदार जो आपने मरे हाथ की पकी रोटी अब इस दीद उल्टे को दी तो ! मरे चाहे खपे, अब हमें घास तक नहीं डालनी है इस करमपीटे पर।``

बड़कू या छोटकू से भी तिल का तेल, बूट का भुंज्जा, आम का अंचार, साबुन की टिकिया, मथपीरी की गोली, गठिये के दर्द का रोगन, एक-दो खिल्ली खैनी जैसी कोई चीज माँग लेंगे.....और अगर उसने कह दिया कि घर में नहीं है तो बस फिर गाली-गलौज, दुरदुराना-कोसना और संबंध खत्म कर लेने का ताना शुरू। बड़कू-छोटकू भी इनकी इस तुनकमिजाजी पर एकदम खार खा लेते हैं। लेकिन दाहू महतो ने इनकी किसी भी बदसलूकी का कोई बुरा कभी नहीं माना। मन में लबालब भरे आदर-सत्कार की सतह किसी भी शिकायत पर कम होने न दी। दुनिया में और है ही कौन इनका, जिनसे वे झगड़ें.....जिनसे वे प्रेम करें? भुखमरी के वक्त भी अपने हिस्से की आधी रोटी इनके लिए बचा लेना उन्होंने हमेशा अपना धर्म समझा। घरवाली और बेटे लाख कुढ़ते रहें।

एक दिन दाहू महतो ने लक्ष्य किया कि बड़कू और छोटकू घर से कहीं गायब हैं और घरवाली की आँखों में कोई भेद तैर रहा है। पूछा तो जवाब सुनकर वे अचम्भित रह गये, "दोनों आज भोर की गाड़ी से गया चले गये हैं। वहीं कोई काम-धंधा करेंगे। घोघरावाला पंचकठवा खेत तुलसी साव के यहाँ रेहन रखकर बीस हजार रुपये अपने साथ लेते गये हैं।``

दाहू महतो बहुत देर तक मानो निष्प्राण से हो गये। तो अब उनसे बिना पूछे खेत बेचे जाने लगे? उनकी सही-दस्तखत की कोई जरूरत नहीं रही। कराहते हुए से पूछा उन्होंने, "तुलसी साव के यहाँ क्यों रखा, मँझले भैया क्या नहीं थे?``

"उन्हीं से पहले पूछा था, वे बारह हजार से ज्यादा देने को तैयार नहीं थे। अपना आदमी हैं न!``एक लंबी और ठंढी साँस लेकर रह गये दाहू महतो।

बड़कू और छोटकू के खैर-सलाह की चिट्ठी हर महीने आती रही, जिसमें यह जानकारी भी रहती कि वे एक धंधे में भिड़ गये है।

छह महीने बाद दाहू महतो के नाम पाँच सौ रुपये का मनिआर्डर आने लगा। साल भर बाद वह बढ़कर एक हजार हो गया। मतलब दोनों ने जो रास्ता चुना है, वह बिल्कुल सही लीक पर है। वे वहाँ किसी कॉलोनी के बगल में आलू-प्याज एवं हरी सब्जियाँ बेचने लगे थे। निष्कर्ष साफ था कि आलू उगानेवाला उतना नहीं उपार्जन कर सकता, जितना उसकी खरीद-फरोख्त करनेवाला। तो यही कारण है व्यवासायियों की हालत किसानों से लाख गुना बेहतर होने का।

दाहू महतो धीरे-धीरे रेहन रखे खेत छुड़ाने लगे थे। अनाज का कर्ज भी चुकता होने लगा था। उनमें अब यह भरोसा जमने लगा था कि गाँव से उजड़ने की नौबत अब पूरी तरह टल जायेगी। उनके बेटे भी अब चाहेंगे कि यहीं जमीन-जायदाद में बढ़ोतरी की जाये। दाहू महतो में एक नयी स्फूर्ति का संचार होने लगा था। गाँव उन्हें अब पहले से ज्यादा अच्छा लगने लगा था। लाछो भैया की देखभाल के प्रति वे और ज्यादा ध्यान देने लगे थे।

इन्हीं अच्छे लग रहे खुशगवार दिनों में बड़कू की एक चिट्ठी आ गयी कि जमीन रेहन रखकर चालीस हजार रुपये का इंतजाम जल्दी करें। स्थायी दुकान के लिए एक बड़ी उम्दा जगह बिक रही है। इसे हर हाल में हमें खरीदना है। चिंता की बाढ़ फिर दाहू महतो की धमनियों में उपराने लगी। एक कट्ठा जमीन रेहन रखते हुए उनका एक लीटर खून मानो सूख जाता था।

घरवाली ने कहा, "लड़कों ने अपने को सही साबित करके दिखा दिया है, इसलिए उनकी बात माननी होगी।``

वे कुछ तय नहीं कर पा रहे थे कि क्या करें.....क्या न करें! तभी आकस्मिक रूप से ऐसे हालात बन गये कि सारा कुछ स्वत: ही तय हो गया।

लाछो भैया बाले बाबू के खेत से एक मुट्ठा बूट के पेड़ उखाड़ रहे थे। मन हो गया होगा बेचारी बूढ़ी जीभ को हरे बूट फोंकने का। बाले बाबू का बड़ा लड़का गन्नू गाँव में ही था इन दिनों। उसने अचानक वहाँ धमककर उन्हें दबोच लिया, जैसे एक बड़े शातिर चोर को रंगे हाथ पकड़ने की जाँबाजी कर ली हो।

"अच्छा तो आप ही हैं इस पूरे खेत के आधे बूट को साफ कर देने वाले? बहुत दिनों से हमें आपकी तलाश थी।``

उसने उनके हाथ से झँगरी छीन ली और कलाई से घसीटकर गाँव की ओर आने लगा। असहाय लाछो महतो फक्क थे, मानो समझने की कोशिश कर रहे हों कि क्या आजकल दो-चार पेड़ बूट उखाड़ लेना भी एक अपराध है, वह भी अपने सहोदर भाई के खेत से?

रास्ते में ही दाहू महतो इस वाकिये से टकरा गये। ऐसी नृशंस कारगुजारी ! क्या इस दुष्ट-ढीठ लड़के को यह मालूम नहीं कि यह आदमी उसका कौन लगता है? यह आदमी तो उसके बाप की तिजोरी पर भी धावा बोल दे तो कोई गुनाह नहीं होगा। उसके बाप के पालनहार रहे हैं ये। उनसे यह अदृश्य देखा नहीं गया। भैया को उसकी घिनौनी जकड़ से छुड़ाने की कोशिश की तो वह उन्हें भी धकियाकर खबरदार करने लगा। बस उन्हें ताव आ गया और उन्होंने हाथ की छड़ी को गन्नू पर ताबड़तोड़ बरसा दिया। वह इसके लिए तैयार नहीं था। अगर होता भी तो दाहू महतो के पुरानी हड्डियों वाले लाठीबाज हाथ से पार न पाता।

उसका सिर फट गया और जिस्म के कई हिस्से जख्मी हो गये।

इसका उन्हें रत्ती भर मलाल नहीं था। भैया को निरीह और बेबस होने के मनोभाव से उन्होंने उबार लिया था। उनका बेजब्त हो जाना एकदम लाजिमी थी। आज तक इस गाँव में किसी को भी किसी के खेत से दो-चार पेड़ चना उखाड़ लेने, मुट्ठी भर मटर तोड़ लेने या एक अदद गन्ना काट लेने में कोई मनाही नहीं थी। कम से कम अपने गोतिया-दियाद के खेत से तो बिल्कुल नहीं। दो दिन बाद जब सुबह ही सुबह दिशा करके लौट रहे थे दाहू महतो तो थाने के दो सिपाही ने उन्हें घेर लिया और अपने साथ थाना लेकर चले गये। लाछो महतो ने तुलसी साव से कर्ज लेकर दरोगा को भेंट चढ़ायी, दौड-धूप की तब जाकर चौबीस घंटे बाद हाजत से वे छूट पाये।

इतनी सी बात पर उनकी इतनी फजीहत और वह भी अपने सहोदर द्वारा! पैसे की गर्मी और कचहरी के रसूख की यह धमार! अगर बाले बाबू को यह प्रतीति हुई थी कि दाहू ने नाजायज कर दिया है तो वे उम्र में बड़े थे, खुद ही आकर या बुलवाकर जवाबतलब कर लेते....गाली-गलौज कर लेते....मार-पीट कर लेते, उन्हें कोई उज्र नहीं होता। आखिर गन्नू पर दाहू महतो ने हाथ चला दिया तो यह अधिकार समझकर कि उनसे छोटा है और अपने बाप के बाप तुल्य आदमी से बदतमीजी से पेश आ रहा है।

अपना मानना भी उन्हें गवारा नहीं था तो पराया मानकर पंचायत ही बिठा लेते। आज तक तो बड़े से बड़ा मामला पंचायत से ही निपटता रहा है इस गाँव में। हाजत में बंद करवाकर जिंदगी भर की उनकी भलमनसाहत और शराफत को सरेआम मानो जलील करवा दिया। अब रह ही क्या गया इस गाँव में उनके पास? अपना ही आदमी इस तरह सलूक कर सकता है तो और उम्मीद ही कहाँ और किससे रह जाती है। इस पुश्तैनी ठीहे से तो बेहतर है शहर की अनजान-अपरिचित दुनिया।

दाहू महतो ने तय कर लिया कि अब वे बेटों के पास शहर चले जाएँगे।

अपने बड़कू को उन्होंने बुलवा लिया। पूरा गाँव यह जानकर सन्न रह गया कि जिस आदमी को अपनी एक धूर जमीन बेचने में भी खून सूखने लगता था, आज वह अपनी पूरी घर-जमीन बेचने का ऐलान कर रहा है। दाहू महतो ने बड़के भैया को भी कह दिया कि वे भी तैयार रहें, उन्हें भी साथ चलना है।

जब सारी तैयारी हो गयी और चलने की घड़ी आयी तो लाछो महतो पता नहीं कहाँ लोप हो गये। ढूँढ़ने पर भी कहीं नहीं मिले। गाँव से एक किसान जिन अनगिनत तारों से बंधा रहता है, उन सबको एकबारगी तोड़ डालना क्या हरेक से संभव है?

बड़कू झल्ला उठा, "आप तो बेकार ही उनके फेर में पड़े हैं। गाँजा-भाँग और ताड़ी का चस्का लगा है उन्हें, इस छोड़कर वे आपके साथ भला क्यों जाएँगे? छोड़िये उनका माया-मोह.....चलिये चुपचाप.....गाड़ी का समय हो गया।``

दाहू महतो चल पड़े। ठीक है, उन्हें नहीं जाना था तो कम से कम अपने पाँव छूने का अवसर तो दे देते। पके हुए आम की उम्र है....पता नहीं पहले कौन टपक जाये ! शहर में पैसे से सब कुछ मिल सकता है पर पिता की तरह लालन-पालन देने वाले भैया के पांव तो नहीं मिलेंगे।

वे अपनी घरवाली और बेटे के साथ गाँव की सरहद से निकलते चले जा रहे हैं.....उदास आँखों से गाँव की भीड़ उन्हें देख रही है। उन्हें लग रहा है जैसे बूढ़ा बरगद आज जड़ से उखड़ गया है और वे उसकी डाल से छिटककर ऊपर बेढंगी हवा में फेंका गये हैं।

(१३ सितंबर २०१० को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

टेढ़ी उँगली और घी

बिल्टूराम बोबोंगा पर पूरे शहर की निगाहें टिक गई थीं।

एक दबा, कुचला, बदसूरत और जंगली आदमी देश का कर्णधार बनने का ख़्वाब देख रहा था। झारखंड मुक्ति संघ नामक एक ऐसी पार्टी का लोकसभा टिकट उसने प्राप्त कर लिया था जिसका तीन-तीन राष्ट्रीय पार्टियों, राष्ट्रीय जनता दल, कांग्रेस और सीपीआई से चुनावी तालमेल था। मतलब चार पार्टियों का वह संयुक्त उम्मीदवार बन गया और इस आधार पर ऐसा माना जाने लगा कि उसका जीतना तय है। डॉ रेशमी मलिक सुनकर ठगी रह गई। बाप की जगह बेटे-पोते, बीवी-बहू या मुजरिमों-माफ़ियाओं, फ़िल्म-खेल के चुके हुए सितारों या धन पशुओं के एकाधिकार वाले प्रजातंत्र में एक अदना आदमी को पार्टी का टिकट! उसे स्कूल का वह मंज़र याद आ गया।

बिल्टू कक्षा में सबसे पिछली बेंच पर बैठा करता था। काला-कलूटा, नाक पकौड़े की तरह फुला हुआ और बेढब। पढ़ाई में सबसे फिसड्डी यानी मेरिट लिस्ट का आख़िरी लड़का। कुछ सहपाठी उसे जंगली कहकर मज़ाक उड़ाते थे। नाम, शक्ल और अक्ल देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह लड़का कभी किसी काम के लायक बन पाएगा या इस लड़के से किसी को प्यार हो सकता है या फिर यह लड़का किसी से प्यार करने की जुर्रत कर सकता है।

लेकिन उसने प्यार किया, जी-जान से किया और उस लड़की रेशमी मलिक से किया जो कक्षा की खूबसूरत और ज़हीन लड़कियों में से एक मानी जाती थी।

उसने कोई एकांत कोना ढूंढकर अपना प्रणय निवेदन करते हुए कहा था, "रेशमी, मैं बदसूरत हूँ, पढ़ने में बोका हूँ, छोटी जाति का हूँ, गरीब हूँ, एक अच्छा नाम तक नहीं है मेरा, इसका यह मतलब नहीं कि मुझे प्यार करने का हक नहीं है। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, अब यह तुम्हारी मरज़ी कि तुम मुझसे प्यार करो या न करो।"

रेशमी हिकारत से उसका हुलिया देखते हुए उसकी हिमाकत पर पहले तो अचंभित हुई, फिर उसे बुरी तरह दुरदुराकर मुँह मोड़ लिया।

कक्षा में प्राय: सभी जानते थे कि रेशमी की दोस्ती प्रेरित चौधरी से है। प्रेरित कक्षा का अव्वल छात्र था, सुंदर था और अच्छे घर-खानदान से ताल्लुक रखता था। उसकी क्रियाओं से रेशमी के प्रति सान्निध्य और स्नेह की तरंगें हमेशा निसृत होती रहती थीं। रेशमी तब यही समझती थी कि कमसिन उम्र का यह अल्हड़ आकर्षण स्कूल तक ही

सीमित रह जाएगा। स्कूल के बाद फिर पता नहीं कौन कहाँ रहेगा, अलग-अलग गंतव्य अपनी-अपनी दिशाओं में बुला लेंगे तो फिर कौन किसको याद रखेगा। मगर ऐसा नहीं हुआ।

रेशमी डॉक्टरी पढ़ने चली गई फिर भी उसका पता जुगाड़ करके बिल्टू और प्रेरित उसे पत्र लिखते रहे। उसने बिल्टू को तो जवाब कभी नहीं दिया, हाँ प्रेरित को कभी-कभी लिख दिया करती। फ़ोन पर भी कभी बात कर लेती। प्रेरित इंजीनियरिंग करने चला गया। बिल्टू किसी तरह दसवीं पास करने के बाद, पढ़ाई-लिखाई छोड़कर शहर में ही जम गया।

रेशमी छुट्टियों में जब शहर आती तो बिल्टू पता नहीं किस सूत्र से अवगत हो लेता और फूलों का गुलदस्ता लेकर उससे मिलने चला आता। रेशमी को उसकी दीवानगी हैरत में डाल देती। एकदम बेमुरव्वत होकर बार-बार दुत्कारना-फटकारना उसे एक अमानवीय श्रेणी की कार्रवाई लगती। आख़िर सहृदयता का जवाब कोई हर बार निष्ठुरता से कब तक दे सकता है? वह उससे दो-चार मिनट बोल-बतियाकर उसका हालचाल पूछ लेने की शालीनता दिखाने लगी।

कुछ छुट्टियों के माह और अवधि लगभग समान होने से प्रेरित से भी मुलाकात का संयोग बैठ जाता। दोनों इकट्ठे काफ़ी बातें और तफ़रीह करते। उन्हें एक-दूसरे से कभी ऊब नहीं होती। ऐसा लगने लगा था कि दोनों उस परिणति की ओर बढ़ रहे हैं जो प्रेम की शीर्ष मंज़िल बन जाती है। प्रेरित के लिए यह तय था कि इंजीनियरिंग पूरा करने के बाद वह किसी अच्छी कंपनी में नौकरी कर लेगा। रेशमी का लक्ष्य शहर में ही आई क्लिनिक खोलकर प्रैक्टिस करने का था। उसके पिता भी एक डॉक्टर थे। अत: वह उनकी विरासत को कायम रखना चाहती थी।

वह सायास चाहती थी कि बिल्टू के बारे में पूरी तरह बेख़बर और अनजान बनकर रहे, लेकिन ऐसा हो नहीं पाता और उसके भीतर बरबस एक इच्छा झाँक उठती कि आख़िर वह क्या कर रहा है, उसका कैसा चल रहा है? हर मामले में निरीह, तुच्छ, पीड़ित और शापित-सा दिखनेवाला वह आदमी आख़िर अपने जीवन की नैया कैसे खे पा रहा है? पता चला कि वह काफ़ी मज़े में है। अंग्रेज़ी शराब की एक दुकान खोल ली है और एक ढाबा चला लिया है। ऊपर से मकान और सड़क बनाने की कॉन्ट्रैक्टरी भी शुरू कर दी है।

एक बार प्रेरित ने उसे जानकारी दी, शायद नज़रों में गिराने की मंशा से, कि किसी ठेकेदारी को लेकर शहर के एक क्रिमिनल ग्रुप से बिल्टू की भिडंत हो गई और गोली-बारी तक चल गई। दो गोलियाँ आकर उसकी जाँघ में लग गई, जिसके इलाज के लिए वह एक नर्सिंग होम में भर्ती है। सुनकर रेशमी में खिन्नता आने की जगह एक दया-भाव उभर आया। उसका मन करने लगा कि उसे देखने के लिए प्रेरित से साथ चलने का अनुरोध करे। लेकिन वह जानती थी कि प्रेरित उससे घृणा करता है और उसे गोली लगने से इसे कोई अफ़सोस नहीं है। शायद रेशमी पर ज़बर्दस्ती अपनी निकटता थोपने के उसके दुस्साहस को लेकर उसमें एक स्थायी चिढ़ घर कर गई थी। रेशमी समझ सकती थी कि प्रेरित की अत्यधिक चाहत ही इसकी वजह है। उसके लिए यह असह्य था कि उसके सिवा कोई और उस पर फ़िदा होने का प्रदर्शन करे।

रेशमी को लगा कि उसमें चाहे लाख बुराई या ऐब हो, इतना शिष्टाचार तो लाज़िमी है कि उसे जाकर एक बार देख लिया जाए। प्रेरित की आनाकानी के बावजूद वह उसे देखने चली गई। आज पहली बार उसके हाथों में उसके लिए गुलदस्ता था। वह आदमी तो न जाने कितनी बार उसे गुलदस्ता भेंट कर चुका था। उस पर नज़र पड़ते ही बिल्टू की जैसे बाँछें खिल गई और उसके चेहरे पर ढेर सारी कृतज्ञता के भाव उभर आए। उसका हृदय भर आया, "तुम आ गई तो यह कहने का मन करता है कि गोली खाना महँगा नहीं पड़ा। इस शर्त पर तो मैं और भी कितनी गोलियाँ खा लूँ। देखना, अब मेरे ज़ख्म सचमुच बहुत जल्दी भर जाएँगे।"

यह पहला मौका था जब उसकी दीवानगी ने ज़रा-सा छू लिया उसे। कुछ देर वह उसे अपलक निहारती रही, जैसे परख रही हो कि क्या वाकई यह आदमी उतना बदसूरत है, जितना वह समझती है? उसे बड़ा ताज्जुब हुआ कि कक्षा में पढ़नेवाले पंद्रह बीस लड़के वहाँ मौजूद हैं। क्या यह आदमी सबका इतना प्रिय और हितैषी है? पता चला वे सारे लड़के उसके नेतृत्व में एक स्वयं सहायता समूह बनाकर कॉन्ट्रैक्टरी कर रहे हैं और अपनी अच्छी आजीविका चला रहे हैं। उन सभी लड़कों की आँखों में बिल्टू के प्रति गहरी चिंता और कुछ भी कर गुज़रने का संकल्प समाया था।

रेशमी ने सहानुभूति जताते हुए कहा, "क्यों करते हो ऐसा काम, जिसमें खून-ख़राबा और मार-काट मचती हो।"

बिल्टू पर एक संजीदगी उतर आई। कहा उसने, "आख़िर क्या करें हम? हम वे मामूली और भीड़ में शामिल बेसिफ़ारिश लोग हैं जिनके लिए शराफ़त का कोई काम नहीं है इस देश में। जो काम है उससे जीवन जिया नहीं बल्कि ठेला जा सकता है। हमें अपनी शक्ल और अक्ल के अनुसार पेशा का चुनाव करना पड़ा है। तुमसे ज़्यादा भला कौन समझ सकता है कि मेरी डरावनी शक्ल और फटेहाल हैसियत का आदमी एक विलेन या बदमाश ही बन सकता है, हीरो नहीं।"

रेशमी ने महसूस किया कि बिल्टू की यह बेबाक उक्ति सीधे उसके मर्म के भीतर प्रवेश कर गई। सचमुच इस देश में ऐसे लाखों औसत लाचार युवकों की सुधि लेने वाला कोई नहीं हैन कोई मुकम्मल योजनान कोई सही दिशा? जब खुद से ही रास्ता चुनना है तो कौन नहीं चाहता ज़्यादा से ज़्यादा आसान और मलाईदार रास्ता!

उसने आगे कहा, "हम इस तरह की जोख़िम उठाए बिना समाज में और अपने पेशे में टिके नहीं रह सकते, रेशमी। हमारे सामने बेरोज़गारों की बेहिसाब बड़ी फौज है और उनमें इतनी कठिन आपाधापी है कि हर कोई एक-दूसरे को गिराने के लिए तत्पर है। तुम ऐसा मत समझो कि हमें ख़तरों से खेलने का शौक हो गया है। हमने सिक्युरिटी एजेंसी में काम करके देखासप्ताह के सातों दिन आठ घंटे हाथ बाँधे खड़े रहो, तनख्वाह डेढ़ हज़ार रुपये। हमने अख़बार में रिपोर्टरी करके देखीचौबीस घंटे इधर-उधर भागते रहो। तनख्वाह डेढ़ हज़ार रुपये। हमने स्मॉल इंडस्ट्री में काम करके देखा। पसीने और कालिख से लिथड़कर ख़तरों से खेलते रहोतनख्वाह डेढ़ हज़ार रुपये। हमने कुरियर सर्विस में जाकर साइकिल से या पैदल दर-दर भटककर चिठ्ठियाँ बाँटीं। तनख्वाह डेढ़ हज़ार रुपये। सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मज़दूरी तक देने के लिए कोई तैयार नहीं। हमें ऐसा महसूस होने लगा जैसे पूरे देश में मुनाफ़ाखोरों और सरमायेदारों ने मिलकर तय कर लिया है कि भूख से लड़ते सर्वहारों को आधा पेट भरने से ज़्यादा का हक कतई नहीं देना है।"

इतने कठोर सच से रेशमी का जैसे पहली बार वास्ता पड़ रहा था। उसकी देह में एक सिहरन दौड़ गई। आख़िर यह देश गरीबी और अमीरी के बीच आसमान-ज़मीन के ऐसे फ़ासले को लेकर कब तक शांत और चैन से चल सकेगा?

अनायास बिल्टू में रेशमी की रुचि बढ़ गई थी। अब वह जब भी छुट्टियों में आती, मन में उससे मिलने का एक अव्यक्त इंतज़ार-सा बना रहता। उसका लाया गुलदस्ता अब वह अनमनेपन से नहीं तनिक गर्मजोशी से लेने लगी। जो मुलाकात दो-चार मिनटों में सिमट जाया करती थी, अब वह ज़रा लंबी खिंचने लगी।

प्रेरित ने उसके बदले अंदाज़ को ताड़ लिया। जिसका ज़िक्र आते ही उबकाई आने लगती थी, उसकी चर्चा अब किसी स्वादिष्ट व्यंजन की तरह होने का राज़ भला छिपा कैसे रह सकता था। कभी-कभी तो वह इस तरह कह जाती थी जैसे पूर्व के हेय-दृष्टिवाले सलूक पर अफ़सोस जता रही हो। उसने एक दिन स्थानीय अख़बार दिखाते हुए कहा, "देखो ज़रा बिल्टू का जलवा। आजकल वह अख़बार की सुर्खियों में आने लगा है। उसने झारखंड मुक्ति संघ ज्वाइन कर लिया है और उस मंच से बहुत सारे सामाजिक काम करने लगा है।"

प्रेरित जैसे कुढ गया, "इसमें नया क्या है रेशमी? गलत और अवैध काम करनेवाले तत्त्व तो राजनीतिक पार्टियों को अपना आश्रय बनाकर रखते ही हैं। अपनी काली करतूत को ढँकने के लिए सामाजिक काम का लेबल तो मुँह पर चिपकाना ही पड़ता है।"

रेशमी ने उसके पक्ष में कोई दलील रखना उचित नहीं समझा। वह समझ गई कि बिल्टू के बारे में कुछ भी अच्छा सुनना अब भी इसके लिए नाकाबिले बर्दाश्त है। रेशमी की चुप्पी को प्रेरित ने खुद से असहमति समझी। उसने फिर कहा, "देखना, किसी दिन यह आदमी मारा जाएगा। शहर में इसकी दबंगता के बहुत किस्से सुनाई पड़ने लगे हैं।"

रेशमी जानती थी कि प्रेरित का कहना पूरी तरह निराधार नहीं है। बेशक वह शहर में सबका हितैषी ही बनकर नहीं था, कुछ के लिए खौफ़ और एक सख्त अवरोधक के रूप में भी वह जाना जाने लगा था। ऐसा नहीं कि रेशमी उसकी तरफ़दार बन गई थी। हाँ, उसमें उसके हर विकास की ख़बर रखने की एक उत्सुकता ज़रूर जग गई थी।

उसके मन में कभी-कभी यह द्वंद्व झाँक उठता कि अगर बिल्टू जो कर रहा है, वो सब छोड़ दे तो आख़िर वह क्या करे? उसने पूछ लिया प्रेरित से। प्रेरित इस सवाल में निहित एक मौन समर्थन से जैसे भन्ना उठा। उसने कहा, "करने के लिए इस देश में सिर्फ गुंडागर्दी और रंगदारी ही नहीं है। दुनिया में ज़्यादातर लोग सज्जनता और ईमानदारी के धंधे करके ही अपनी जीविका चलाते हैं। लेकिन कोई रातोंरात लाखों के ऐश्वर्य का किला खड़ा कर लेना चाहे तो उसके लिए गलत और अवैध होना या फिर आततायी और बर्बर होना ही एकमात्र शार्टकट रास्ता हो सकता है।"

रेशमी को लगा कि अपने दुराग्रह के कारण प्रेरित सच्चाई की खामखाह अनदेखी कर रहा है। वह अपने को रोक न सकी, "बिल्टू बर्बर और आततायी नहीं है प्रेरित। वह साहसी है, निडर है। किसी भी जुल्म और आतंक से टकरा जाने का उसमें माद्दा है। अपने हक के लिए मर मिटने की उसमें दिलेरी है। ऐसा नहीं कि किसी बेकसूर या भले

आदमी को यों ही परेशान या तंग करता है। हाँ, जो चीज़ें समाज में बाहुबल, सीनाजोरी और टेढ़ी उँगली से हासिल करने का चलन है, उसमें वह भी अपना ज़ोर लगा देता है। अब भला रोड या बिल्डिंग बनाने का ठेका किसी साधु को तो नहीं मिल सकता?"

आपसी वाद-विवाद बीच में असहनीय खटास की स्थिति उत्पन्न न कर दे इसलिए प्रेरित ने खुद को संयमित कर लेना ही उचित समझा।

अगली छुट्टियों में वह आई तो बिल्टू के पहले उससे मिलने पड़ोस की एक बुजुर्ग महिला आ गई। उसने अत्यंत दयनीय और विनीत भंगिमा बनाकर कहा, "बेटी, मैं महीनों से तुम्हारी राह तक रही थी। तुम जानती हो कि मैं एक अकेली औरत हूँ और मेरे दो छोटे-छोटे बच्चे हैं। टाइगर फोर्ट नामक बिल्डर ने मेरी ज़मीन पर कब्जे के लिए पूरा जाल फैला दिया है और वह हमें डरा-धमका कर ज़बर्दस्ती करने पर उतारू है। हमने मदद के लिए कई कथित पराक्रमियों और पुलिस अधिकारियों से गुहार लगाई, मगर सबने उस बिल्डर का नाम सुनते ही अपने हाथ खड़े कर लिए। तुम चाहो तो हमें उससे मुक्ति मिल सकती है, अन्यथा हम बर्बाद हो जाएँगे।"

"मेरे चाहने से आपको मुक्ति मिल जाएगी, कैसे? मैं समझी नहीं?" हैरत में पड़ते हुए कहा रेशमी ने।

"मैंने कई बार देखा है, बिल्टूराम बोबोंगा तुम्हारे घर आता है, उससे तुम्हारी दोस्ती है। वही एक आदमी है जो मुझे मुसीबत से छुटकारा दिला सकता है।"

रेशमी को सब कुछ समझ में आ गया। बिल्टू के एक नये चेहरे से वह परिचित हो रही थी। तो उसकी अब यह हस्ती हो गई! उसने बड़े आदर से आश्वासन दिया, "आँटी, अगर मेरे कहने से आपका काम हो जाएगा, तो आप निश्चिंत होकर घर जाइए, मैं बिल्टू को ज़रूर कहूँगी और उम्मीद है वह मेरा कहा नहीं टालेगा।"

ठीक ऐसा ही हुआ। बिल्टू ने चुटकी बजाते ही उसकी मुसीबत दूर कर दी। रेशमी ने कहा तो उसी वक्त उसने अपने मोबाइल पर बिल्डर टाइगर फोर्ट से संपर्क कर लिया। उसके रौब और धाक भरे संबोधन सुनकर वह उसका मुँह देखती रह गई। सबसे पीछे बेंच पर बैठनेवाला और कक्षा का सबसे चुप रहनेवाला दब्बू लड़का क्या इस तरह रूपांतरित हो सकता है? बिल्टू अब आता था तो उसके पीछे दो-तीन सुमो और क्वालिस गाड़ियाँ होती थीं। खुद वह बोलेरो में होता था और उसके साथ कई लोग होते थे। अत: उसका आना एक ख़बर बन जाती थी। आसपास के लोग हसरत से देखने लगते थे। रेशमी को पहले उसके इस तरह तामझाम के साथ आने पर झेंप होती थी, अब जरा फ़ख्र जैसा होने लगा था।

अगले दिन कृतज्ञता से भरी वह महिला हाथ जोड़े उसके सामने खड़ी हो गई। रेशमी सोचने लगी कि क्या आज की बेमुरव्वत हो रही फिज़ा में अपने ऊपर एक ऐसे आदमी की छतरी का तना होना अनिवार्य बन गया है?

प्रेरित को जब उसने इस घटना की जानकारी दी तो कसैला हो गया उसका मुँह। वह इसकी आलोचना करते हुए कहने लगा, "ऊपरी तौर पर लगता है कि आसानी से काम हो गया, लेकिन इसका दूरगामी असर सुखद नहीं हो सकता। ठूँठ पेड़ की छाया धूप हो या चाँदनी, बेमानी और एक छलावा है।"

प्रेरित के इस वक्तव्य में जहाँ एक सच्चाई की ध्वनि थी वहीं यह हिदायत भी थी कि ऐसे आदमी से जितना दूर रहा जाए, उतना अच्छा है। रेशमी को इससे इंकार नहीं था कि बिल्टू का प्रभाव क्षेत्र चाहे जितना बड़ा हो गया हो, मगर छवि तो उसकी एक बुरे और दागदार आदमी की ही है। रेशमी इसका पूरा ख़याल रखना चाहती थी कि बिल्टू के कारण प्रेरित से लगाव में कोई फीकापन न आए। मगर यह कौन जानता था कि प्रेरित का यह मंतव्य खुद उसे ही कसौटी पर खड़ा करके डाँवाडोल कर देगा!

प्रेरित के पिता का एक जमा-जमाया स्कूल उनके पार्टनर द्वारा कब्ज़ा कर लिया गया। उसके पिता मुंशी सुखधर चौधरी एक शिक्षक थे। रिटायर होने के बाद उन्होंने समाजसेवक कहे जानेवाले एक व्यक्ति रामधनी शर्मा के साथ मिलकर एक विद्यालय की स्थापना की। इसमें उन्होंने अपने सारे संसाधन और अपनी सारी जमापूंजी लगा दी। सारी वांछित सुविधाएँ जुटाकर स्कूल को सी बी एस ई से संबद्धता दिलाने में सफल रहे। शैक्षणिक गुणवत्ता से कोई समझौता न करना पड़े, इसे ध्यान में रखकर अन्यत्र काम कर रहे उच्च शिक्षा प्राप्त अपनी एक बेटी और दामाद को भी बुलाकर स्कूल में लगा दिया। स्कूल की अच्छी साख बन गई और खूब चल निकला। प्रतिष्ठा और आय का एक अजस्र स्रोत बन गया। उत्कृष्ट पढ़ाई की दृष्टि से सभ्रांत नागरिकों में इसके क्रेज़ का ग्राफ़ सबसे ऊपर हो गया। इसमें नामाँकन के लिए जाँच-परीक्षा के रूप में एक कड़ी कसौटी तय करनी पड़ी। रामधनी शर्मा की नीयत ख़राब होने लगी। आमदनी, हैसियत और कद्र का बँटवारा उसे खटकने लगा। ज़मीन उसकी दी हुई थी, इसलिए उसे लगा कि इस पर सौ प्रतिशत स्वामित्व उसका ही होना चाहिए।

उसका एक बेटा गोनू शर्मा नालायक निकलकर सीधे-सीधे अपराध और तमाम तरह के दुष्कृत्यों व काले कारनामों का हिस्ट्रीशीटर बन गया था और उसे ज़्यादातर समय जेल में ही बिताना होता था। खूँटा मज़बूत और सिर पर तने चंदोवा को अभेद्य जानकर रामधनी ने मुंशी जी को स्कूल से बेदखल कर देने का हिटलरी फ़ैसला कर लिया। जानता था कि मुंशी शरीफ़ आदमी है, कुछ कर नहीं पाएगा। मुंशी के साथ उनकी बेटी और दामाद को भी उसने निष्कासित कर दिया। मुंशी जैसे अचानक सड़क पर आ गए। सपरिवार मिलकर खून-पसीने से उसे सींचा था और अपना सर्वस्व दांव पर लगाकर उसमें वांछित फूल खिलाए थे। स्कूल से बेदखली का अर्थ पूरी तरह उनकी बर्बादी था। उन्होंने न्याय के लिए अदालत का दरवाज़ा खटखटाया। मुकदमा चलने लगा। एक साल दो साल पूरे परिवार की स्थिति बिगड़ती गई।

रेशमी देख रही थी कि प्रेरित का सुखी-संपन्न परिवार तकलीफ़ों और परेशानियों में घिरता जा रहा है। उसकी माली हालत खस्ता होती चली जा रही है। एक बार तो यों जान पड़ा कि उसकी इंजीनियरिंग की पढ़ाई भी बाधित हो जाएगी। हालात बता रहे थे कि अदालत में टलती और बढ़ती हुई तारीखें जब फ़ैसले तक पहुँचेंगी तब तक बहुत कुछ ख़त्म हो चुका होगा।

रेशमी बार-बार इशारा कर रही थी कि इस मामले में बिल्टूराम बोबोंगा का हस्तक्षेप काफ़ी लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। अंततः एक दिन प्रेरित ने अपने मन की तहें खोलते हुए कहा, "पहले तो मेरे पिता किसी ऐसे आदमी की सहायता स्वीकार नहीं करेंगे जो आतंक और ज़ोर-ज़बर्दस्ती का पर्याय है। दूसरी बात यह कि बिल्टू मेरी मदद करेगा भी नहीं। क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि मैं शुरू से ही उससे नफ़रत करता रहा हूँ। वह तुम पर अपनी चाहत थोपता है, इस मामले में तो वह मुझे अपनी राह का काँटा समझता होगा। क्या पता वह मदद करने की जगह मेरी और जड़ खोदने लग जाए। जो भी हो, फिलहाल हमारी अंतरात्मा उसकी शरण में जाने की इज़ाज़त नहीं देती। हम लोगों के धैर्य अभी ख़त्म नहीं हुए हैं। इंसाफ़ और सच्चाई पर अब भी हमारा भरोसा कायम है। हम कुछ दिन और इंतज़ार करना चाहते हैं।"

"जैसा तुम उचित समझो। मेरा मकसद तुम पर अपना विचार लादना नहीं है। हाँ, इतना मैं अवश्य कहना चाहूँगी कि अगर पानी सिर से इतना ऊपर हो जाए कि नैतिकता, उसूल, जान-जहान आदि सब कुछ के डूब जाने का ख़तरा बन जाए तो तिनके का सहारा समझ बिल्टू को एक बार आज़मा लेना कोई ऐसा पाप नहीं होगा कि परलोक में नर्क भोगने की नौबत आ जाए। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हें मदद करने में वह ज़रा भी कोताही नहीं करेगा। तुमसे वह किसी तरह का बैरभाव रखता है, ऐसा मैंने कभी महसूस नहीं किया। अगर रखता भी होगा तो मैं अपनी तरफ़ से उससे विशेष निवेदन करूँगी।"

खुद्दारी, ईमानदारी और इंसाफ़पसंदगी की कीमत चुकाने की एक हद थी, जिसे एक न एक दिन पार तो होना ही था। वही हुआ। शहर से उजाड़ देने और मिटा डालने की धमकियाँ क्रमश: तेज़ होने लगीं और तारीख दर तारीख की टलती अदालती कार्रवाइयों में गवाह और जिरह के पक्ष कमज़ोर होते गए। प्रेरित ने जैसे हार मानते हुए कहा, "अब तुम अगर वाकई हमारा कुछ उद्धार करवा सकती हो रेशमी, तो करवा दो। पिताजी बुरी तरह टूट गए हैं और मुझे भी सत्य-मार्ग की दलदल में अंदर तक धँसते जाने के सिवा कोई उम्मीद नहीं दिखती।"

रेशमी को सुनकर ज़रा भी ताज्जुब नहीं हुआ। मानो उसे पहले से पता था कि अंत में यही होना है।

उसने प्रेरित के लिए बिल्टू के सामने जैसे अपना आँचल फैला दिया, "उसे उबार लो बिल्टू। उसका पूरा परिवार भय, अपमान, पीड़ा और दरिद्रता की गर्त में घुट-घुटकर जी रहा है। तुम्हीं अब संकटमोचक बन सकते हो।"

बिल्टू ने ताज्जुब करते हुए कहा, "रेशमी, एक अर्से से वह इतनी परेशानियों में रहा, फिर पहले ही मुझे क्यों इसकी जानकारी नहीं दी? तुम्हारा वह सबसे घनिष्ठ दोस्त है, उस पर जुल्म होता रहा और तुम चुप्पी साधे रही? ख़ैर, मैं देखता हूँ अब।"

सकुचाते हुए कहा रेशमी ने, "दरअसल, वह चाहता था कि कानून और सच्चाई के रास्ते से चलकर ही इस मुसीबत से निजात पाएँ।"

"मैं समझ गया। हर आदमी यही चाहता हैशांति, इंसाफ़ और ईमानदारी की डगर पर चलना। मगर ऐसा हो नहीं पाता तभी टेढ़ा और ख़तरनाक रास्ता चुनने के लिए आदमी को मजबूर होना पड़ता है। कभी मैंने भी ऐसा ही चाहा था, रेशमी। प्रेरित को दिलासा देना कि अब उसके लिए घी टेढ़ी उँगली से ही निकलेगा। उसे हम बचाएँगे रेशमी, हर हाल में बचाएँगे, इसलिए कि उससे तुम प्रेम करती हो। तुम्हारी खुशी के लिए मैं कुछ कर सकूँ, ऐसा मौका मेरे लिए पहली बार आया है।"

रेशमी अचंभित रह गई। यह आदमी, जो एक बुरा आदमी माना जाता है, प्रेरित की इसलिए मदद करना चाहता है कि उसे रेशमी प्रेम करती है। मगर एक प्रेरित है, जो अच्छा आदमी है, बिल्टू से इसलिए मदद या एहसान लेने से कतराता रहा क्योंकि वह रेशमी से प्यार का इज़हार करता आ रहा है। यहाँ प्रेम में गहराई और सच्चाई होने की सुई ज़्यादा किसकी ओर झुकती है? रेशमी के भीतर जैसे निर्णय का कोई मज़बूत स्तंभ हिल गया। लगा कि बिल्टूराम बोबोंगा अब कहीं से भी बदसूरत नहीं रहा।

बिल्टू ने पूरी गंभीरता और शि त से इस काम को अपने हाथ में लिया और एक चमत्कार करने की तरह थोड़े ही समय में सब कुछ ठीक-ठाक कर दिया। मुंशी जी की पुरानी हैसियत फिर से बहाल हो गई।

बिल्टू ने अपनी ओर से ज़रा-सी भी आहट लगने नहीं दी कि उसे इस काम में क्या-क्या पापड़ बेलने पड़े। प्रेरित ने ही एक दिन इसे खुलासा किया। बिल्टू के प्रति उसके चेहरे पर ज़मीं पूर्वाग्रह और हिकारत की सारी कड़वाहटें काफ़ूर हो गई थीं। अब वह एक एहसान और उसके करिश्माई तेज से मानो अभिभूत था। उसने जो बताया, वह कहानी इस तरह थी -

रामधनी शर्मा किसी भी तरह मानने के लिए तैयार नहीं था। पहले तो जेल में बंद गोनू के गैंगवालों ने फुफकार दिखाई कि वे लोग भी किसी से कम नहीं हैं। कोई बाहरी आदमी टाँग अड़ाएगा तो खून की नदी बहेगी, लेकिन स्कूल में मुंशी को घुसने नहीं दिया जाएगा।

बिल्टू ने भी ताल ठोक ली, "ठीक है, जब खून की नदी ही बहनी है तो बहे, लेकिन किसी भी सूरत में मैं मुंशी जी के बिना स्कूल चलने नहीं दूँगा। इतना डिस्टर्ब कर दूँगा कि सारे माँ-बाप अपने बच्चों को यहाँ भेजना बंद कर देंगे।"

बिल्टू के फ़ौलादी और आक्रामक तेवर देखकर रामधनी शर्मा भीतर से हिल गया। सेर को सवासेर मिल जाने का उसे अंदाज़ हो गया। उसे स्कूल से बरसते धन और सम्मान के उपभोग का चस्का लग गया था। उसने बिल्टू को पैसे से पटा लेने का मन बनाया और कहा, "दो लाख चार लाख, जितना चाहे ले लो और इस मामले में दखल देना छोड़ दो।"

बिल्टू ने कहा, "मैं पैसे के लिए काम ज़रूर करता हूँ, लेकिन यह काम मैं एक ऐसी चीज़ के लिए कर रहा हूँ, जिसके सामने पैसा कोई मोल नहीं रखता।"

रामधनी शर्मा ने कहा, "इस काम के बदले आख़िर तुम्हें क्या मिलनेवाला है। जो मिलने वाला है उससे मैं ज़्यादा देने को तैयार हूँ।"

"इस काम के बदले मुझे जो मिलने वाला है, उससे ज़्यादा तो मुझे ईश्वर भी नहीं दे सकतातुम क्या दोगे?" बिल्टू का जवाब था।

रामधनी समझ गया। यह आदमी ज़रा सनकी और जुनूनी है। इसकी सख्त तस्वीर के भीतर ज़रूर कोई बड़ा मकसद काम कर रहा है, वरना पैसे के लिए कुछ भी कर गुज़रनेवाला आदमी इतना मज़बूत नहीं हो सकता।

रामधनी ने जब अपने सूत्रों से गहरी छानबीन शुरू की तो बिल्टू का एक सहपाठी और अब उसके एक विश्वसनीय साथी ने तथ्य से अवगत करा दिया, "बिल्टू भाई प्यार करता है रेशमी से और रेशमी प्यार करती है प्रेरित से। अत: यह तय है कि प्रेरित-परिवार को इस मुसीबत से निकालने के लिए वह कुछ भी कर गुज़रेगाकुछ भी।"

सुनकर रामधनी शर्मा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसके लिए यकीन करना मुश्किल था कि जिस आदमी के लिए यह बात कही जा रही है वह एक बदशक्ल, डरावना और लिजलिजा-सा दिखनेवाला आदमी है। अगर यह सच है तो प्रेरित के लिए कुछ भी कर गुज़रेगा। इस बात में उसे कोई शक नहीं रह गया। उसका बेटा अगर जेल से बाहर रहता तो मुकाबला किया भी जा सकता था। फ़िलहाल उसने झुक जाने में ही अपनी खैऱ समझी। अगर हिसाब-किताब चुकाना होगा तो बाद में देखा जाएगा।

रेशमी देख रही थी कि जिन आँखों में बिल्टूराम बोबोंगा के लिए ढेर सारी घृणा और कटुता समाई रहती थी, आज उनमें बेपनाह सद्भावनायें तैर रही हैं। प्रेरित एकदम उसका कायल हो उठा था। रेशमी की कल्पना-दृष्टि में अचानक एक तराज़ू उभर आया, जिसके एक पलड़े पर प्रेरित और दूसरे पर बिल्टू तुलने लगा। वह देखना चाहती थी कि प्रेरित वज़नदार दिखे, लेकिन ऐसा नहीं हो रहा था। प्रेरित ने जैसे उसके मन को पढ़ते हुए कहा, "बिल्टू ने सचमुच साबित कर दिया है रेशमी कि वह तुमसे मेरी तुलना में सच्चा और ज़्यादा प्यार करता है।"

रेशमी ने कोई टिप्पणी नहीं की।

डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी हो गई तो रेशमी ने पूर्व निर्णय के अनुसार अपने शहर में ही बतौर एक नेत्र विशेषज्ञ आई क्लिनिक खोल ली। उसके डॉक्टर पिता काफ़ी बूढ़े हो गए थे। अत: उन्हीं की क्लिनिक को उसने अपने लायक बना लिया। प्रेरित नौकरी की राह पर चल पड़ा था, मगर कहीं एक जगह स्थिर नहीं था। बड़े ओहदे तथा मोटी तनख्वाह की तलाश में उसे बार-बार कंपनी बदलनी पड़ रही थी।

रेशमी की प्रेरित से मुलाकात में काफ़ी कमी आ गई, जबकि बिल्टू से मुलाकात में तेज़ी आ गई। बिल्टू अक्सर क्लिनिक में आ जाता। पेशेंट नहीं होते तो देर तक अड्डा मार देता। अब दोनों के बीच बोरियत या ऊब की जमी बर्फ सदा के लिए पिघलकर आत्मीयता और सौहार्द्र की सरिता में रूपांतरित हो गई थी।

रेशमी अनुभव करती कि बिल्टू अपने काम, अपने ग्रुप और तमाम तरह के ख़तरे और जोख़िम के बारे में बातें करता तो उन्हें सुनना अच्छा लगता। राजनीति में प्रवेश और उसकी एक-एक सीढ़ी पर अपनी चढ़ाई के बारे में भी वह बताने लगा था। सीढ़ियों की चढ़ाई में कई तरह के सामाजिक कार्य शामिल हो गए थे। झोपड़पट्टियों में कंबल बाँटना बंद कारखाने के मज़दूरों में राशन बाँटना, गरीब बच्चों में किताबें बाँटना। बिजली-पानी के लिए हाहाकार वाले इलाके में लोगों के आँदोलन में भाग लेना आदि-आदि।

एक बार उसने एक गरीब बस्ती में नेत्र शिविर लगाने की योजना बनाई और उसमें चिकित्सकीय सहायता उपलब्ध कराने का दायित्व रेशमी पर डाल दिया। रेशमी अब उसके ऐसे जनहित कार्यक्रम के लिए इंकार नहीं कर सकती थी। पहले नेत्र शिविर में वह गई तो वहाँ की व्यवस्था देखकर आह्लादित हो उठी। एक विशाल तना हुआ तंबू और उसमें जाँच करवाने के लिए उपस्थित सैकड़ों साधनहीन लोग और वहाँ सेवा देने के लिए दर्जनों कार्यकर्ता। सबके लिए कंबल, चश्मा और भोजन की नि:शुल्क व्यवस्था। बिल्टू ने इतना-इतना इंतज़ाम अपने बलबूते अकेले कर लिया था। उसकी विस्तार पाई सामर्थ्य और उस सामर्थ्य का भलाई में रूपांतरण उसके उजले पक्ष का एक नया परिचय था। इस शिविर की सफलता के बाद बिल्टू हर साल ऐसे शिविर का आयोजन करने लगा। जिनके लिए दुनिया धुँधली या बिल्कुल अँधेरी होनेवाली थी, ऐसे सैकड़ों लोगों को उसकी पहल से नयी रोशनी मिल गई।

प्रेरित से धीरे-धीरे संपर्क कम होते-होते जैसे पूरी तरह ख़त्म हो गया था। रेशमी हैरान थी कि हर दूसरे-तीसरे दिन फ़ोन करनेवाला उतावला और बेकरार आदमी इस तरह उदासीन और निरपेक्ष कैसे रह सकता है? कहीं उसने यह तो नहीं मान लिया कि रेशमी की चाहत बिल्टू की तरफ़ शिफ्ट हो गई, अत: नज़दीकी मिटाकर बीच की रागात्मकता और त्रिकोण की दुविधा को ख़त्म कर दे? रेशमी जैसे उदास हो गई। उसे बड़ा दुख हुआ कि जिस आदमी के मन-प्राण में बरसों-बरस प्यार करने और निभाने की बेइंतहा तड़प बसी थी, उसने अपने को इस तरह काट लिया। निश्चय ही ऐसा करने के लिए उसे अपने सीने पर एक भारी पत्थर रखना पड़ा होगा। जबकि सच्चाई यह थी कि रेशमी ने अपने मन में उसके आसन की ऊँचाई को ज़रा-सा भी कम नहीं किया था। बिल्टू ने उसकी उदासी को पढ़ते-पढ़ते आख़िर इसका भेद एक दिन खुलवा ही लिया। रेशमी को लगा कि वस्तुस्थिति जानकर बिल्टू का मन भारी हो जाएगा, लेकिन उसने ऐसा कुछ भी ज़ाहिर होने नहीं दिया और बड़े हौसले के साथ कहा, "मुझे तुम उसका पता दे दो, वह जहाँ भी होगा मैं उसे पकड़कर ले आऊँगा। वह तुम्हें इस तरह सता रहा है, यह जायज़ नहीं है।"

रेशमी उसका मुँह देखने लगी थी। उसका नवीनतम पता और फ़ोन नंबर अब उसके पास था ही कहाँ जो वह देती। मुंशी जी से माँग लाने में एक ज़िद आड़े आ जाती। एक दिन अचानक प्रेरित उसके सामने आकर खड़ा हो गया। रेशमी को लगा जैसे स्वप्न देख रही हो।वह काफ़ी दुबला और कांतिहीन-सा हो गया था। वह समझ गई कि शायद विरह में घुट-घुट और तड़प-तड़प कर काफ़ी एकतरफ़ा एकांत यातना झेली गई है। रेशमी ने उसकी ठंडी और सूखी हथेलियों को अपने हाथों में भर लिया और उलाहना भरे स्वरों में कहने लगी, "क्यों खुद पर जुल्म करते रहे? तुमने कैसे समझ लिया कि तुम्हारे सज़ा भोगने से मुझे खुशी मिलने लगेगी?"

"मुझे माफ़ कर दो रेशमी, मैं वाकई नहीं जानता था कि कक्षा का और साथ ही समाज का भी सबसे फिसड्डी और आख़िरी पंक्ति का लड़का बिल्टू राम बोबोंगा अब हैसियत से ही नहीं बल्कि दिल और दिमाग से भी अगली पंक्ति का इंसान बन गया है। मैं हैरान हूँ कि उसके मन में मेरे लिए रंचमात्र ईर्ष्या नहीं है।" श्रद्धा से परिपूर्ण प्रेरित की आवाज़ में एक अलौकिक मिठास उतर आई थी।

रेशमी अभिभूत-सी हो उठी, "तो तुम्हें यहाँ लेकर बिल्टू आया है?"

"बिल्कुल। अन्यथा मैंने तो अब यही तय कर लिया था कि मेरे बनिस्वत बिल्टू की अब तुमसे ज़्यादा नज़दीकी है, ज़्यादा निभती है।"

प्रेरित ने ऐसा कहा तो क्षण भर के लिए रेशमी सचमुच डगमगा गई। यह अजीब स्थिति थी कि बिल्टू प्रेरित को उसके समीप ला रहा था और प्रेरित बिल्टू को उसके समीप मान रहा था। दोनों की इन नि:स्वार्थ क्रियाओं से यह फ़ैसला करना जैसे एक बार फिर से मुश्किल हो गया था कि वह वाकई किसके ज़्यादा करीब है।

पार्टी का टिकट अब तक बिल्टू को मिल गया था। रेशमी ने इसकी जानकारी देते हुए कहा, "वह सचमुच अब मामूली आदमी नहीं रहा। हमें कभी यकीन नहीं आया था कि टिकट लेने की आपाधापी में वह बाज़ी मार लेगा। हम यही सोचते थे कि ऐसे-ऐसे पार्टी वर्करों का नसीब झंडा ढोना और जय-जयकार करना भर ही होता है। चूंकि हमें अब यही देखने को मिल रहा है कि कोई भी पार्टी अब आम या मामूली आदमी को टिकट नहीं देती। पहले से जो जमा हुआ पदासीन है, वह मरता है या बूढ़ा हो जाता है तो टिकट उसकी बीवी या बेटे को दे दिया जाता है, जिसे हमारी महान जनता अक्सर सहानुभूति वोट देकर विजयी बना देती है। कहने वाले ठीक ही कहते हैं कि महान जनता

के पूर्वजों के खून में ही विदेशी आक्रांताओं ने वंशवाद के विषाणु इंजेक्ट कर दिए थे। अपवादस्वरूप अगर किसी छोटे आदमी को टिकट मिल जाता है तो उसे हराने के लिए अन्य पार्टियाँ हज़ारों अवरोध उसके रास्ते में बिछा देती हैं।"

"लेकिन अपना यह बिल्टू देखना सारे अवरोधों को पार कर लेगा, रेशमी।"

"बिल्टू अगर वाकई ऐसा कर सका तो हम इसे एक नये युग की शुरुआत मानेंगे।"

बिल्टू का प्रचार अभियान तेज़ी से चल निकला। पोस्टर, बैनर, भाषण, रैली आदि सभी मोर्चों पर वह किसी से पीछे नहीं दिख रहा था। उसके पीछे उसके सहपाठियों, कार्यकर्ताओं, शुभचिंतकोंे और समर्थकों की एक बड़ी फौज थी। दूसरे दल के उम्मीदवार, जो बड़ी जाति के खानदानी रईस लोग थे, ने भी अपनी पूरी शक्ति और तिकड़म झोंक दी थी। उनमें त्रिशूल छाप का उम्मीदवार दीनानाथ सबसे भारी लग रहा था और उसने चुनाव को एक दलित के खिलाफ़ सवर्ण की प्रतिष्ठा का सवाल बना दिया था। पता चला कि दीनानाथ ने अपनी पहुँच का उपयोग करते हुए अपनी मदद के लिए जेल में बंद कुछ अपराधियों की ज़मानत करवा ली थी। रामधनी शर्मा का बेटा गोनू भी दीनानाथ द्वारा भिड़ायी किसी बड़ी सिफ़ारिश से बाहर आ गया था और बिल्टू के खिलाफ़ काम करने लगा था। बिल्टू को किसी की परवाह नहीं थी और वह किसी से भी किसी मामले में उन्नीस नहीं था। जातीय आधार पर भी दलितों और आदिवासियों की संख्या यहाँ किसी से कम नहीं थी।

एक दिन रेशमी आई क्लिनिक के पास चुनाव प्रचारवाली गाड़ियों का एक लंबा काफ़िला आकर रुका। दर्जनों गाड़ियाँ, दर्जनों कार्यकर्ता। पूरा बाज़ार उस काफ़िले को हसरत भरी आँखों से देख रहा था कि क्या एक दलित, पीड़ित, शोषित और उपेक्षित आदमी का रुतबा भी इतना बड़ा हो सकता है! बिल्टू उतरकर रेशमी के पास आ गया। रेशमी उसकी तैयारी देखकर हर्ष-विभोर हो गई। कहा, "आज एकदम विजेता की तरह लग रहे हो।"

"विजेता हुआ नहीं हूँ, होने के लिए वोट माँगने निकला हूँ। सोचा आज बोहनी तुमसे ही करता चलूँ। तुम्हारा वोट चाहिए मुझे।"

"मेरे वोट पर तो तुमने अपना नाम बहुत पहले ही लिख दिया है, बिल्टू।"

"अगर यह सच है तो मुझे जीतने से कोई रोक नहीं सकता, रेशमी। चलता हूँ। आज अपनी उन बस्तियों में जाना है जहाँ अब तक विकास का कोई काम नहीं हुआ। जहाँ लोग कीड़े-मकोड़े की तरह छोटे-छोटे दड़बों, खोलियों और झोपड़ियों में रहते हैं। वे मेरी जाति, मेरे रंग और मेरी औकात के लोग हैं। उनकी बुझी आशाओं को हम एक बार फिर से जगाना चाहते हैं।"

"मेरी शुभकामनाएँ तुम्हारे साथ है, बिल्टू। अपना पूरा खयाल रखना।"

"आज कितने दिनों बाद जैसे एक बार फिर से तुम्हारे चेहरे खिले हुए दिख रहे हैं। उम्मीद है प्रेरित तुम्हें सताने का काम अब कभी नहीं करेगा।"

बिल्टू ने जैसे मनोयोग से उसे पढ़ते हुए कहा और हाथ हिलाते हुए निकल गया। रेशमी आभार जताने के लिए बस सोचती रह गई।

प्राय: लोगों का ऐसा मानना था कि हवा बिल्टू के पक्ष में बह रही है। रेशमी को भी विश्वास हो चला था कि चुनावी रेस में वह निश्चय ही सबसे आगे निकल जाएगा। उसकी जीत के लिए मन ही मन एक अनवरत प्रार्थना चल रही थी। प्रेरित से अब बातचीत का विषय चुनाव और बिल्टू पर ही केंद्रित हो गया था। उसकी जीत से वह इतना जुड़ गई थी कि सपने भी आते तो उसमें विजय पताका फहराते हुए बिल्टू ही दिखाई पड़ता। रेशमी के लिए यह अत्यधिक रोमाँचकारी था कि एक ऐसे समय में जब मामूली आदमी को दबाए रखने के हज़ारों षड़यंत्र चल रहे हों, एक लांछित-अवांछित आदमी लोकतंत्र की सीढ़ी चढ़कर शासन और सरकार के सबसे बड़े प्राचीर में पहुँच जाएगा।

मतदान में दो दिन रह गए थे। उसकी धड़कनें काफ़ी बढ़ गई थीं। शाम को चुनाव प्रचार ख़त्म होनेवाला था। रेशमी जानती थी कि फ़ुर्सत मिलते ही बिल्टू सबसे पहले यहीं आकर चैन की साँस लेगा। वह प्रतीक्षा कर रही थी। जिस बिल्टू को वह कभी निर्ममता से दुत्कारकर देती थी, जिसके सामने आ जाने से उसका मूड बिगड़ जाता था, आज उससे मिलने की तलब मानो चरम पर थी। क्लिनिक की खिड़की से वह सड़क पर गुज़रती गाड़ियों में उसकी बोलेरो को पहचानने की कोशिश कर रही थी। इसी बीच प्रेरित भागता हुआ दिखाई पड़ गया। रेशमी देखते ही समझ गई कि उसके चेहरे की उड़ी रंगत में किसी अशुभ की छाया कंपकंपा रही है। आशंका सच साबित हुई। उसने बताया, "गोनू शर्मा ने बिल्टू की गोली मारकर हत्या कर दी।

रेशमी को लगा जैसे कोई भूचाल आ गया और छत टूटकर उसके सिर पर गिर पड़ी। उसकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। तो आख़िरकार कक्षा का सबसे बदसूरत, सबसे दबा हुआ, सबसे छोटा, सबसे दीन-हीन और सबसे भोंदू लड़का, जो अपना सूरतेहाल बदलकर बड़ा और अगली पंक्ति का आदमी बनने चला था, बन नहीं सका। दीनानाथ ने उसे मरवाकर अपने सामंती राजमार्ग पर एकाधिकार को फिर से सुरक्षित कर लिया और गोनू ने मारकर अपना बदला ले लिया। गोनू से उसकी अदावत रेशमी के कारण ही थी। मतलब उसके फना होने में सियासत ही नहीं मोहब्बत भी एक वजह थी।

बिल्टू की मार्फत वह दुनिया को बदलते हुए देखने की उम्मीद में एक रोमांच से भरी रहती थी। आज वह पूरे यकीन से कह सकती थी कि दरअसल वह प्रेरित से ज़्यादा बिल्टू को ही प्यार करती रही। अब उसके बिना उसके चेहरे पर खुशी शायद कभी नहीं लौटेगी।

(१ अप्रैल २००६ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

नागरिक मताधिकार

मास्टर रामरूप शरण बड़े ही उद्‌विग्न अवस्था में स्कूल से घर लौटे। छात्रों को नागरिक मताधिकार पढ़ाते-पढ़ाते आज उन्हें अचानक एक गंभीर चिंता से वास्ता पड़ गया। वे अन्यमनस्क हो उठे। घर आते ही उन्होंने अपने बड़े लड़के राजदेव को बुलाया और हड़बड़ाते हुए से कहा, "जल्दी से जाकर मुखियाजी, प्रोफेसर साहब, वकील साहब, इंद्रनाथ सिंह और बृजकिशोर पांडेय को बुलाकर ले आओ। कहना कि मैं तुरंत बुला रहा हूँ....एक बहुत जरूरी काम आ गया है।"

राजदेव चला गया। मास्टर साहब अनमने से दालान की ओर जाने लगे तो पत्नी को उनकी चिंतित मुद्रा देखकर जिज्ञासा हो उठी, "क्यों जी, क्या हुआ? आप इतना परेशान क्यों हैं? चाय-वाय भी नहीं पी और तुरंत बुलावा भेज दिया?"

"तुम नहीं समझोगी, ज़रा चाय बनाकर रखो, वे लोग आ रहे हैं।"

पत्नी चिढ़ गई, "हाँ, आपकी तो कोई बात मेरे समझने के लायक होती ही नहीं।"

"ओ...बहुत समझती हो तो लो समझो - उनसे नागरिक मताधिकार के सही एवं सटीक उपयोग के बारे में विमर्श करना है...समझीं?" रामरूप जी ने खीजकर कहा।

"हाँ समझी...और संसकिरित में बोलिए तो खूब समझूँगी। जाइए, मैं चाय बनाती हूँ।"

"जाइए....मैं चाय बनाती हूँ।" मास्टर ने खिसियाते हुए मुँह बनाकर उसकी नकल उतारी और दालान की ओर चले गए। वहाँ चौकी को झाड़-पोंछकर बिछावन लगाया। सब लोग आ गए तो बड़े प्रेम से बिठाया। राजदेव को चाय के लिए कहकर वे सबसे मुखातिब हो गए, "एक बहुत ही ज़रूरी काम से मैंने आप लोगों को बुलाया है...अच्छा हुआ कि आप लोग घर पर ही मिल गए। आपलोगों को तो मालूम ही है कि संसद का चुनाव होनेवाला है।"

"मालूम है।" किसी ने कहा।

"मतदान में बीस दिन का समय रह गया है।"

"मालूम है।"

"चुनाव प्रचार तेजी से चल रहा है।

"मालूम है।"

"मैदान में पाँच उम्मीदवार हैं।"

"मालूम है।"

"फिर आपलोगों ने निर्णय लिया कि वोट किसे देना है?"

"तो क्या इसी जरूरी काम के लिए आपने बुलाया हमें?" मुखिया जी ने कहा तो सब खिलखिलाकर हँस पड़े। मास्टर के माथे पर बल पड़ गया, वे और भी गंभीर हो गए, "भाई तो क्या यह काम जरूरी नहीं है?"

"देखिए मास्टर साहब, यह तो बिल्कुल अपनी-अपनी पसंद और इच्छा पर निर्भर है। आप ही बताइए, हमलोग कोई एक राय बनाकर सब पर उसे थोपें, क्या यह न्यायसंगत होगा?"

"प्रोफेसर साहब, आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। मैं वही तो जानना चाहता हूँ कि आपलोगों ने अपनी-अपनी पसंद और इच्छा कायम की या नहीं।"

"इसके लिए अभी से इतना परेशान होने की क्या जरूरत है? जब वक्त आएगा तो किसी को वोट दे देंगे। ऐसे भी जो लोग किसी पार्टी विशेष की विचारधाराओं और नीतियों में विश्वास करते हैं, वे तो उसी पार्टी के उम्मीदवार को वोट देंगे, यह जाहिर ही है।"

"इन्द्रनाथ भाई, यही मानसिकता हम लोगों को लगातार क्षतिग्रस्त कर रही है। वक्त आता है और हम व्यक्तिगत रूप से किसी को बगैर जाने-समझे वोट दे देते हैं। भुलावे में डालनेवाली पार्टी की विचारधाराओं और नीतियों से आकर्षित होकर उसके नाम पर खड़े माटी के माधो को भी वोट डाल देते हैं। लेकिन ज़रूरत है हमें यह समझने की कि नागरिक अधिकारों में मताधिकार सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, जिसका उचित, सटीक एवं विवेकपूर्ण प्रयोग न होने से व्यक्ति एवं समाज के भूत-वर्तमान-भविष्य तीनों प्रभावित होते हैं। यही कारण है कि आज सर्वत्र अच्छाइयों का लोप हो रहा है, बुराइयाँ हर क्षेत्र में जड़ पकड़ रही हैं।"

"फिर आप चाहते क्या हैं?" मुखिया, प्रोफेसर एवं पांडेय ने करीब-करीब एक साथ पूछा।

"हम चाहते हैं कि पाँचों उम्मीदवारों का पूरा परिचय प्राप्त किया जाए, फिर सब अपना-अपना फैसला करें कि वोट किसे देना है। इसके लिए मतदाता विशेष में लगन एवं चिंता होनी चाहिए कि वे उम्मीदवारों को परखने में गलती न करें। अतएव उम्मीदवार से अधिक ज़िम्मेदारी हरेक मतदाता की है कि वे थोथे विज्ञापनों और प्रचारों की चकाचौंध से प्रभावित न हों, वरन खुद दौड़-धूप कर सही तथ्य का पता लगाएँ कि वोट के वाजिब हकदार कौन हैं।"

"आप जैसा चाहते हैं, क्या वह देश के दो तिहाई निरक्षर एवं मूढ़ मतदाताओं के लिए संभव है?"

"हम एक तिहाई साक्षरों एवं बुद्धिजीवियों के लिए तो संभव है। हम इस समाज के आगे चलनेवाले लोग हैं...उन्हें सही दृष्टि देना...रास्ता सुझाना हमारा काम है।"

"ठीक है, जैसी आपकी मरज़ी!" मुखिया जी ने विरक्त भाव से कहा तो चारों ने उसी मुद्रा में उनका समर्थन कर दिया।

मास्टर जी उत्साहित हो उठे, "आप लोगों से मुझे यही उम्मीद थी कि आप मेरी चिंता को ज़रूर गंभीरता से लेंगे। प्रजातंत्र का सबसे बड़ा हथियार है नागरिक मताधिकार। हम अपना राजा अंधा चुनें या त्रिकालदर्शी, यह हमीं पर निर्भर है...इसलिए...।"

इन्द्रनाथ की सहन-शक्ति एकाएक चुक गई मानो, "हम समझ गए...कोई और दूसरी बात भी है या हम चलें!" इन्द्रनाथ खड़े हो गए तो उनके साथ अन्य लोग भी खड़े हो गए।

मास्टर जी के उत्साह पर मानो घड़ों पानी पड़ गया, "लगता है, आप लोगों की मुझसे वैचारिक सहमति नहीं बन पा रही। कृपया बैठिए, अगर ऐसी बात है तो अब ज़्यादा वक्त मैं आप लोगों का नहीं लूँगा। आप लोग मेरे मित्र हैं...मन की छटपटाहट आपसे न व्यक्त करूँ तो किससे कहूँ?"

"रामरूप जी, आप बड़े विचित्र रोग के शिकार हो रहे हैं।" मुखिया जी ने यों कहा जैसे किसी बड़े भेद से पर्दा हटा रहे हों।

"मुखिया जी! आप इसे रोग कह रहे हैं? मैं तो सोच रहा हूँ कि आज से पहले मेरे दिमाग में इतनी ज़रूरी युक्ति ने क्यों दस्तक नहीं दी? समझने की कोशिश करेंगे तो आपको खुद-ब-खुद अपनी लापरवाही का ज्ञान होने लगेगा।"

"अच्छा, हम फिर आयेंगे अपना दिमाग फ्रेश करके। अभी तो सचमुच खोपड़ी में कुछ घुस नहीं रहा।" वकील साहब का मकसद किसी भी तरह कन्नी काट लेना था।

"दो मिनट...सिर्फ़ दो मिनट," मास्टर जी घिघिया पड़े, "राजू, ज़रा चाय लाना बेटे। कल से आप लोग दो-चार दिनों का समय निकालिए। देखिए, यह मेरी विनती है, इसे अस्वीकार मत कीजिए।"

"इन चार दिनों में करना क्या है, सो तो कहिए।" बृजकिशोर ने पूछा।

"हम हरेक उम्मीदवार के गाँव जाकर उसके चरित्र, आचरण और योग्यता की सही जानकारी हासिल करेंगे। फिर हम तय करेंगे कि वोट की पात्रता किसमें है।"

"माफ कीजिए मास्टर जी। मैं नहीं जा सकूँगा। मेरी पत्नी की तबीयत खराब है।" मुखिया जी ने अपनी जान छुड़ाई।

"मुझे भी कल से एस डी ओ ऑफ़िस जाना है, वहाँ मेरा एक काम अटका है।" पांडेय जी ने अपनी असमर्थता की धूल झोंक डाली।

"कल मेरे ससुर जी आनेवाले हैं।" अपना पल्ला झाड़ लने से इन्द्रनाथ क्यों बाज आते।

"मेरे सिर में दो-तीन दिनों से चक्कर आ रहा है।" यह अचूक बहाना प्रोफेसर का था।

"कल से मेरे कुछ सीरियस मुकदमों की तारीखें हैं।" वकील साहब तो पेशेवर बहानेबाज थे। पिंड छुड़ाने का वज़नदार रास्ता ढूँढ निकाला।

टाल-मटोल के बेहद फूहड़ दृश्य से सामना करके मास्टर जी बहुत उदास हो गए, "मतलब, आप सभी कल से धुआँधार व्यस्त हैं। लेकिन एक बार मैं फिर आप सभी से अनुरोध करना चाहूँगा कि यह व्यस्तता जो आप ओढ़ रहे हैं, इससे कई गुणा ज़्यादा ज़रूरी है मेरा कहा काम। आप जागरूक लोग भी इस तरह कन्नी काटेंगे...।"

जाने के लिए वे पुन: एक साथ खड़े हो गए। मास्टर जी ने अंतिम कोशिश की, "खैर, मैं कल से छुट्टी लेकर इस काम में लग रहा हूँ...रात में एकाग्रचित होकर आप भी इस पर विचार करें। शायद मैं अपनी बेचैनी को ठीक से शब्द नहीं दे पाया। बहरहाल, आप पढ़े-लिखे लोग हैं...अगर मेरे कहे का अर्थ निकल जाए तो सुबह आप लोगों का स्वागत है।"

राजदेव चाय ले आया था। सभी लोगों ने जल्दी-जल्दी सुड़क लिया और तेज़ी से फुट गए। मास्टर जी बहुत खीज भरी मुद्रा में उन्हें जाते हुए देखते रहे। हुँह...मुखिया हैं...वकील हैं...प्रोफेसर हैं...लंद हैं...फंद हैं...खाक हैं। उनके कुछ दूर चले जाने के बाद उनकी एक समवेत हँसी का स्वर मास्टर जी के कानों से आकर टकराया। उन्हें बड़ा तरस आया - बेवकूफ़!

अगले दिन से ही मास्टर रामरूप ने उम्मीदवारों के स्थायी आवास का पता कर लिया। फिर बारी-बारी से वहाँ जा-जाकर जानकारी इकट्ठी करने लगे। इस काम में उन्हें बेहद कठिनाई का सामना करना पड़ा। एक-दो उम्मीदवार तो सुदूर दूसरे प्रदेश के थे, जिन्हें यहाँ लाकर उनकी पार्टी ने खड़ा कर दिया था। उन्हें खासी झुंझलाहट हुई...यह क्या तरीका है...दूसरी मिट्टी और जलवायु के आदमी को भला यहाँ की क्या समझ होगी? ख़ैर, इनके बारे में बिना ज़्यादा मगजपच्ची किए स्थानीय उम्मीदवारों पर ही उन्होंने अपना ध्यान केन्द्रित किया। वे लक्ष्य कर रहे थे कि आस-पड़ोस के लोग साफ़-साफ़ कुछ भी बताने से हिचक महसूस कर रहे थे। लेकिन धुन के पक्के मास्टर जी जब

अपना उद्देश्य बताते तो लोग व्यंग्य से अपने दाँत निपोड़ लेते। इस उपहास पर मास्टर जी को बहुत कोफ्त हो उठती। कोई-कोई तो ढीठता से मसखरीवश उनसे पूछ लेता, "क्या इनसे अपनी लड़की की शादी करनी है आपको?"

मास्टर जी इस गाली को गरिष्ठ भोजन की तरह गले से उतारते हुए कहते, "शादी करनी होती तो इतनी जाँच-पड़ताल नहीं करता। उसमें तो एक ही लड़की के भविष्य का सवाल रहता, लेकिन यहाँ तो लाखों-लाख के भविष्य का सवाल है।"

इसी तरह इन फब्तियों को झेलते हुए वे अंतत: कोई न कोई नेक खयाल व्यक्ति की तलाश कर ही लेते, जिनसे उनका मकसद पूरा हो जाता और वे आश्वस्त हो जाते।

एक उम्मीदवार उनके ससुराल का ही था, जो रिश्ते से करीब का साला लगता था। उसके बारे मे वे पहले से ही बहुत कुछ जानते रहे थे।

अब जब सबके बारे में पूरा हुलिया एकत्रित हो गया तो मास्टर जी एकदम अचंभे में पड़ गए। सारे के सारे उम्मीदवार बेहद दाग़दार और दुष्टता की हद पर खड़े हुए थे। एक भी ऐसा नहीं था जिसे सर्वथा योग्य समझकर वोट दिया जाए। उनके साले पर पाँच खून और कई बलात्कार के मुकदमे चल रहे थे। एक उम्मीदवार तो एक समय का कुख्यात डाकू रह चुका था। एक तस्करी के मामले में कई बार जेल जा चुका था। एक कई हरिजन-बस्तियों को जलाने का रिकार्ड बना चुका था। एक बड़े भारी रईस बाप का रात दिन शराब के नशे में धुत रहने वाला निकृष्ट बेटा था जिसका अड्डा रात-दिन तवायफ़ों के कोठों पर टिका रहता था।

मास्टर जी गहरी चिंता में डूब गए - देश क्या इन्हीं शोहदों, उचक्कों और नालायकों के बूते चलेगा? क्या ऐसे ही छंटे हुए लोग जनतंत्र के प्रहरी बनेंगे? बहुत चिंतन-मनन के बाद उन्होंने तय किया कि डाकू रह चुका उम्मीदवार मोरन सिंह ही इन चारों में थोड़ा अच्छा है। पढ़ा-लिखा है...परिस्थितियों ने उसे डाकू बना दिया होगा। लेकिन अब लगता है उसका हृदय परिवर्तित हो चुका है। हो सकता है व्यक्ति और समाज की मौजूदा चुनौतियों और भावनाओं को समझकर वह अच्छा काम कर जाए।

इस तरह एक कठोर विश्लेषण के आधार पर उन्होंने एक निष्पक्ष नतीजा निकाला और उससे अपने परिवार और गाँववालों को अवगत कराते हुए कहा कि हमें वोट देना है तो मोरन सिंह को ही देना है। उनका कहा सबको एक मज़ाक जैसा लगा...लगता है मास्टर सनक गया है और बेकार की बातों में माथा-पच्ची करने लगा है। इसके पूर्व तो वह इन चक्करों में नहीं पड़ा करता था।

गाँववाले तो मास्टर के रवैए से चुटकी लेने के मूड में ही थे, घरवाले भी परेशान थे कि आखिर इन्हें हो क्या गया? मास्टर जी अपनी स्थापना रखते तो उन्हें चुप कराते हुए वे अपनी राय देने लगते कि हमें वोट देना है तो सिर्फ़ हरप्रताप को देना है। वे जान-पहचान के हैं...उनसे अपना कुछ काम भी निकाला जा सकता है। मास्टर जी उद्विग्न

हो उठते...कैसे समझायें इन्हें? अरे बददिमाग, तुम तो अपना काम निकाल लोगे लेकिन देश और समाज का क्या होगा, ऐसे नकारा आदमी से उनका तो कुछ भी भला नहीं हो सकता।

मास्टर जी ने इस विषय पर लगातार तकरार होते रहने से कई दिनों तक घर में खाना नहीं खाया। उन्हें लगने लगा था कि वे एकदम अकेले हो गए हैं। पत्नी और बच्चे तक उसके साथ नहीं हैं। उन्होंने फिर भी अपने बूते भर लोगों को समझाने का प्रयास जारी रखा कि वे सिर्फ़ और सिर्फ़ वोट मोरन सिंह को ही दें...इसी में हम सबका भला है। हरप्रताप जब यहाँ चुनाव प्रचार करने आया तो उसने मास्टर और उनकी पत्नी से विशेष तौर पर मुलाकात की। अपना पूरा अनुनय-विनय उनके सामने बिछा दिया कि वह उनका रिश्तेदार है तो उनके वोट पर तो उसका हक है ही, उनके वोट भी उसके खाते में आने चाहिए जो उनके पड़ोसी और गाँववाले परिचय और संपर्क के दायरे में हैं। अंदर ही अंदर चिढ़ रहे मास्टर तो एक करारा जवाब उसके मुँह पर ही दे मारना चाहते थे, "हाँ हाँ क्यों नहीं, पाँच खून और सैकड़ों बलात्कार का अपूर्व अनुभव है तुम्हारे पास तो भला वोट और किसे दिया जा सकता है!" लेकिन सबका लगाव देखकर मन मसोसकर रह गए। हरप्रताप ने पूरे गाँव-जवार में घूम-घूम कर इस रिश्ते को खूब भंजाया। जीजा और जीजी संबोधन को सरेआम करके उसने अपने पक्ष में मानो एक हवा-सी बना दी।

जिस रोज़ मतदान था, मास्टर जी को ठीक से नींद नहीं आई। एक उत्सुकता और कौतूहल ठक-ठक करके उनके दिमाग़ में बजता रहा। वे बहुत तड़के ही नहा-धोकर तैयार हो गए। ज्योंही आठ बजा अपने साथी मुखिया, वकील, प्रोफेसर आदि की तलब करने लगे कि साथ ही चलकर मतदान कर आएँगे। पता चला कोई अपने घर में नहीं हैं...सभी अपने-अपने धंधे में मसरुफ़ हो गए हैं। मास्टर जी को बहुत झल्लाहट हुई...आज के दिन भी अति जागरूक माने जानेवाले ए लोग एक महत्त्वपूर्ण एवं बहुमूल्य अधिकार के उपयोग के लिए ज़रा-सा चिंतित नहीं हैं। जाएँ भाड़ में मूर्खाधिराज सब, वे अकेले ही जाकर इस राष्ट्रीय दायित्व का निर्वाह कर आएँगे। वे शनैः शनैः मतदान केन्द्र की ओर बढ़ गए।

केन्द्र पर पहुँचे तो काफी चहल-पहल नज़र आई। गाँव के कुछ छंटे हुए शोहदे किस्म के लड़के बहुत सक्रिय नज़र आए। मास्टर साहब को वे ज़रा घूरते और नापते हुए से दिखे। मास्टर साहब ने इनकी बिना परवाह किए अपना गंतव्य ढूँढ़ लिया। अपनी क्रम संख्या और भाग संख्या की जानकारी उन्होंने पहले ही जुटा ली थी। मतदान अधिकारी ने उनकी पर्ची देखकर वोटर लिस्ट में उनका नाम ढूँढ़ा तो वहाँ पहले से ही टिक का निशान लगा हुआ था। उसने उनका मुँह देखा और तरस खाने तथा कोसने के मिले जुले भाव लाकर बताने लगा कि आपका वोट पोल हो चुका है। वे सन्न रह गए...ऐसा कैसे हो सकता है...एक नागरिक के सबसे बड़े अधिकार के साथ ऐसा क्रूर मज़ाक करने की छूट किसी को मिल कैसे जाती है? यह तो सरासर अपमान है किसी के अस्तित्व का। गुस्से से तलफलाकर वे मतदान अधिकारी का मुँह नोच लेना चाहते थे, तभी उनकी अकिंचन और ठिसुयायी हालत देखकर लाइन से बैठे पार्टी के एजेंट बने छोकरे खिलखिलाकर हँस पड़े। इनमें अधिकांश उन्हीं के विद्यालय के पूर्व विद्यार्थी थे। बेहद लुटी-पिटी सी मुद्रा लेकर वे केन्द्र से बाहर निकल गए। उन्हें लगा कि हर आदमी उन्हें ही घूरकर उनकी इस स्थिति का मज़ा ले रहा है। कोई उन्हें अगर टोक देता तो वे शर्तिया फूट-फूट कर रो पड़ते।

घर आकर वे बिस्तर पर निढाल पसर गए। कुछ ही देर में उन्हें तेज़ बुखार हो आया। पत्नी उनकी स्थिति से अवगत होकर उन्हें समझाने लगी, "इस तरह दुनिया-जहान के मुद्दे पर आप बीमार और दुबले होने लगेंगे तो जीना दुश्वार हो जाएगा। आपने अपना फर्ज़ निभाया, व्यवस्था ने साथ नहीं दिया तो जाएँ जहन्नुम में।"

मास्टर जी ने मन ही मन तय किया कि अब वे कक्षा में नागरिक शास्त्र नहीं पढ़ायेंगे, विशेषकर नागरिक मताधिकार तो बिल्कुल ही नहीं।

मतदान के तीसरे दिन सर्वत्र परिणाम की बेसब्री से प्रतीक्षा होने लगी। मास्टर जी का ध्यान भी उधर ही टँगा हुआ था। उन्हें अपने फैसले के सच होने का अब भी बहुत भरोसा था। अपनी पत्नी से उन्होंने कहा, "ज़्यादातर मामलों में सत्य और शिव की ही जीत होती आई है...चूँकि आज भी दुनिया में सत्य-बल है, तभी यह धरती टिकी है। मुझे उम्मीद है, मोरन सिंह ज़रूर जीतेगा।"

मास्टरनी सहमत नहीं थी, फिर भी उनकी अधीरता का खयाल करके दबे स्वर में कहा, "अब तो कुछ ही मिनट-घंटे की बात है। हालाँकि सबके सब हरप्रताप भाई का ही नाम ले रहे हैं।"

मास्टर जी ने उसके तात्पर्य को टटोलते हुए ज़रा थाहने की मंशा से पूछ लिया, "राजदेव की माँ ! एक बात पूछूँ, कसम लो कि सच-सच बोलोगी, तुमने वोट हरप्रताप को ही दिया है न?"

वह बुरी तरह सकपका गई...एक मोटा असमंजस उतर आया चेहरे पर। कहा, "कसम न देते तो सच की भनक तक मैं लगने न देती। हरप्रताप को वोट न देती तो क्या उस मुए मोरन सिंह को देती, जिसकी सूरत तक मैंने नहीं देखी। मुझे माफ़ कर दीजिए कि बहुत चाहकर भी मैंने आपका कहा नहीं माना।"

मास्टर एकदम रूआँसा हो गए और उनकी आवाज़ भर्रा गई, "धर्मपत्नी हो...अर्द्धांगिनी हो...यही है तुमसे मेरा रिश्ता कि मैं इतना कुछ झेल गया और उसका तुम पर रत्ती भर असर नहीं हुआ। ठीक कहा है किसी ने कि दुनिया के सब रिश्ते-नाते झूठे हैं...कोई किसी का कुछ नहीं लगता...।"

मास्टर जी का दुख किसी पके घाव की तरह रिस रहा था तभी घर के बाहर की गली से हरप्रताप के नाम से जिंदाबाद के नारे सुनाई पड़ने लगे। आवाज इतने पास से और इतनी तीव्रता से आ रही थी जैसे मास्टर जीको जान-बूझकर सुनाया-चिढ़ाया जा रहा हो। उनका चेहरा बुझ गया और आवाज़ गहरी उदासियों में डूब गई, "हे भगवान! अब तो इस मुल्क का तुम्हीं माई-बाप हो। लो, जीत गए तुम्हारे आदरणीय और कर्मठ भाई। देख क्या रही हो...दौड़ो...जाओ, खुशियाँ मनाओ...नारे लगाओ...उन्हें बधाई दो। मेरा मुँह चिढ़ाओ...मुझ पर हँसो...थूको...ताने मारो।"

उनकी आँखों में आँसू छलछला आए। मास्टरनी को उनकी कातरता ने एक अपराध बोध से भर दिया। इसी बीच पास के बरामदे से समग्र संवादों को आत्मसात कर रहे उनके बेटे राजदेव ने आकर हस्तक्षेप किया, "पिता जी, आपने मुझे क्यों नहीं पूछा कि मैंने वोट किसे दिया?"

"अब भी पूछने की क्या कोई ज़रूरत है? तुम्हारे सुर तो हमेशा माँ के साथ ही मिलते हैं। तुम लोगों के लिए अपना स्वार्थ के आगे कुछ भी महत्त्व का नहीं है। मताधिकार तो महज़ ख़रीद-फरोख्त होनेवाली एक मामूली-सी औपचारिकता है। देश के बनने-बिगड़ने से इसका कोई लेना-देना नहीं। क्रिकेट की तरह का यह एक बस खेल है, जिसे चुनावी मौसम में खेलने लगते हैं तमाम धंधेबाज, तमाम जुआरी, तमाम खिलाड़ी, तमाम बाहुबली, तमाम निठल्ले लोग...।"

"पिता जी, आप यकीन मानिए...अगवान साक्षी है...मैंने अपना वोट मोरन सिंह को दिया है, आपके आकलन पर मैंने अपनी सहमति की मुहर लगायी है और हरप्रताप मामा को वोट मैंने नहीं दिया।"

"क्या?" मास्टर जी के चेहरे पर जैसे हजार वाट का बल्ब जल उठा। वे इतने खुश हो गए गोया उनकी बहुत बड़ी मुराद पूरी हो गई। उन्होंने लपककर राजदेव को अपने सीने से लगा लिया। आह्लादित होकर कहने लगे, "तूने मुझे टूटने से बचा लिया बेटे...मेरे विश्वास की तूने रक्षा कर ली। सच मानो, अब मेरा दुख बहुत कम हो गया है। कोई तो है जिसने मेरी खब्त को समझने की कोशिश की। अब मैं यह मान सकता हूँ कि मेरी कोशिश बेकार नहीं गई...मेरी चिंता को एक वारिस मिल गया है जिसके मेरे बाद भी कायम रहने की उम्मीद है। देखो राजदेव की माँ, अगर न्याय हो तो तुम्हारा हरप्रताप इस घर से ही पराजित हो रहा है और मोरन सिंह विजयी हो रहा है। उसके पक्ष में तुम्हारा अकेला वोट और मोरन सिंह के पक्ष में दो वोट।"

मास्टर के चेहरे पर खुशी का एक ज्वार उमड़ आया। उनके उमगते कंठ से निकल पड़ा, "मोरन सिंह...।"

राजदेव कह उठा, "ज़िंदाबाद...।"

(४ अगस्त २००८ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

निवेश

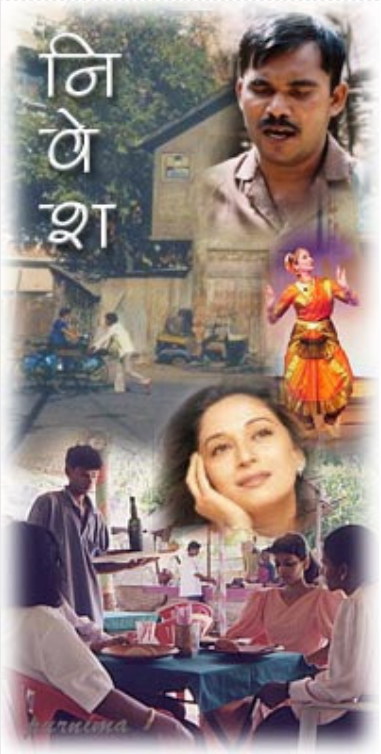

फुल्लू चाटवाला - माधुरी दीक्षित का घनघोर कद्रदान।

मकबूल फिदा हुसैन के अलावा भी माधुरी दीक्षित पर फिदा हज़ारों दीवाने हैं इस देश में, जिन्हें कोई नहीं जानता, खुद माधुरी भी नहीं, इसलिए कि वे मकबूल की तरह मकबूल नहीं हैं। ऐसे ही दीवानों में एक दीवाना है फुल्लू चाटवाला। उसके पास न तो इतने पैसे हैं, न वह इतना रसूखवाला है और नाही इतना इल्मदार कि अपनी दीवानगी को मूर्त रूप देने के लिए उससे बतौर हीरोइन काम करवाकर गजगामिनी फिल्म बना दे। यों वह जानता है कि दीवाना होने के लिए फिल्म बनाना, अमीर होना या मारूफ होना कोई शर्त नहीं हैं।

वह यह भी जानता है कि दीवाने तो अक्सर फक्कड़, फटेहाल और बेनाम लोग ही होते रहे हैं। तो माधुरी को लेकर उसके पागलपन से अब यह पूरा शहर अवगत हो गया है। अखबारवाले अब इसके समाचार को चुहलबाजी की मुद्रा में किसी चटनी या अचार परोसने की तरह छापते हैं जिसे लोग लुत्फ ले-लेकर पढ़ते हैं। कई लोगों को यह समाचार पढ़कर फुल्लू से रश्क हो उठता है कि यह आदमी एक बेवकूफी करके ही सही मगर धीरे-धीरे चर्चित हो रहा है।

यों ही टाइम पास के लिए फिल्मी पत्रिकाओं के पन्ने पलटता रहता और हीरोइनों की अर्धनग्न तस्वीरें निहारा करता। उनके स्तनों के उभार, जाँघों के सुडौलपन, नितंबों के कसाव और कपोलों व होठों में समाये आमंत्रण-आकर्षण में देर तक खो सा जाता। खासकर माधुरी दीक्षित की तिरछी हंसी और कंटीली अदा का मानो उस पर जादू छा जाता। उसकी कोई भी फिल्म लगती, वह हॉल में जाकर जरूर देख आता। वह माधुरी के जन्म-दिन पर बधाई कार्ड भी डालने लगा। आदमी के पास करने के लिए कुछ न हो तो वह क्या-क्या करने लग जाता है? शायद कुछ लोगों का यह मानना ठीक है कि देश के ऐसे ही बेरोजगारों के वक्त-काटू शगल के कारण अपना यह बॉलीवुड ज्यादातर अनाप-शनाप फिल्में बनाकर भी आबाद है।

फुल्लू की दो-तीन साल पहले यह नौबत न थी। खासकर तब जब हार्ट अटैक से मरने के पहले उसके पिता कल्लू दुकान पर बैठते रहे। कम से कम सौ दुकानों वाले इस मार्केट में पक्की छत और दीवारों के बीच चलने वाली चाट की यह अकेली दुकान थी, जहाँ ग्राहक बजाब्ता अपने परिवार सहित कुर्सी-टेबल पर ठाठ से बैठकर

चाट खा सकते थे। इस दुकान के अलावा अगर कहीं चाट की उपलब्धता थी तो विभिन्न नुक्कड़ों-चौराहों पर सड़क के किनारे ठेलों पर थी, जहाँ हाथ में प्लेट लेकर खड़े-खड़े खाना होता था। इस हिसाब से फुल्लू की दुकान चाट की एक्सक्लूसिव दुकान थी।

इस दुकान पर ग्रहण लगना तब शुरू हुआ जब इसके ठीक सामने चिरंजी शर्मा जूस वाले ने अपनी दुकान का कायाकल्प करके उसे 'ग्लोबल स्नैक्स कॉर्नर' में तब्दील कर दिया। पहले वह गन्ने का, संतरे का, मुसम्बी का, अनार का रस बेचा करता था, अब वह पिज्जा, चाउमिन, हैमबर्गर, सैंडविच और हॉटडॉग बेचने लगा। पहले उसकी दुकान में भीमसेन जोशी, शुभा मुद्गल और किशोरी अमोनकर के ऑडियो आलाप गूँजते रहते थे, अब वहाँ माइकेल जैक्सन, मडौना, ब्रिटनीस्पीयर्स आदि के शोर और हुल्लड़ सीडी पर दिखने-बजने लगे। बस देखते ही देखते चाट के सारे ग्राहक उस तरफ मुड़ गये। फुल्लू के पास ग्राहक की जगह उड़ाने के लिए सिर्फ मक्खियाँ रह गयीं। बड़े शौक से चाट खाने वाले अपने कई परिचित ग्राहकों को अब वह दूर से पिज्जा या नॉनवेज हैमबर्गर खाते हुए देखता रहता। उसे दया आती कि आधुनिकता का आकर्षण लोगों को क्या-क्या खाने के लिए मजबूर कर रहा है? उसका एक दोस्त था गोरेलाल, जो कोई काम न मिलने के कारण अंतत: एक स्थानीय अखबार में स्ट्रिंगर बन गया था। फुर्सत में वह अक्सर उसके पास आकर बैठ जाया करता। वह जानता था कि एक खानदानी निष्ठा (उसके पिता कल्लू स्वदेशी जागरण मंच के सदस्य थे) के कारण बनारसी चाट की दुकान में निहित देसीपन में वह कोई ऐसा परिवर्तन नहीं कर सकता, जैसा चिरंजी ने कर लिया, इसलिए इसी में कुछ गुंजाइश निकालने की जरूरत है।

इस तरह फुल्लू की खंडहर होती हालत देखकर सोचते-सोचते एक दिन उसने कहा, "ठीक है, तुम चाट की दुकान ही चलाना चाहते हो, चलाओ। लेकिन विज्ञापन और प्रचार के इस जमाने में तुम्हें वो तरीके अपनाने होंगे कि ग्राहक तुम्हारी तरफ आकर्षित हो। चाट परोसने में भी कुछ फीचर जोड़ो। विज्ञापन का ही कमाल होता है कि एक ब्रैंड का नाम देकर चमकदार रैपर में पैक किया हुआ मामूली आटा, लाल मिर्च, आलू चिप्स, नमक, पानी आदि राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित होकर गैरमामूली तरीके से बिकने लगता है। स्वदेशी रैपर में भी हम अच्छी पैकिंग कर सकते हैं।" गोरेलाल को सुनते हुए जैसे फुल्लू के दिमाग की कोई खिड़की धीरे-धीरे खुलने लगी। गोरेलाल ने आगे कहा, "चलो, हम एक काम करते हैं, अगले महीने १५ मई को माधुरी दीक्षित का जन्म दिन है, हम उसे भारी धूमधाम से मनाते हैं। इससे माधुरी के प्रति तुम्हारे दीवानेपन की तुष्टि भी हो जायेगी। उस दिन जो भी दुकान में आएगा, उसके लिए मुफ्त की चाट और मुफ्त का एक लॉटरी टिकट। लॉटरी में प्रथम पुरस्कार एक मारूति कार रख दो। इस मद में तुम्हें चालीस-पचास हजार खर्च करना पड़े, कर दो। अपने पास न हो तो इसे एक जरूरी निवेश समझकर कर्ज ले लो।"

फुल्लू ने हिसाब लगाते हुए पूछा, "चालीस हजार में कैसे होगा कम से कम ढ़ाई लाख तो मारूति कार के लिए ही चाहिए।"

गोरेलाल ने उसे असली बनियागिरी सिखाते हुए समझाया, "अरे लॉटरी का ड्रॉ करना किसे है कोई पूछे तो ड्रॉ की तारीख बढ़ाते जाना है। यही तो करते हैं ज्यादातर धंधेबाज। एनाउंस होनेवाली तीन-चार प्रतिशत लॉटरी ही ड्रॉ के परिणाम तक पहुँचती है। भला फुर्सत भी किसे है इतना पीछे पड़ने की। जिसका टिकट मुफ्त में मिला हो उसके लिए पूछने का आदमी के पास मॉरल भी कहाँ होता है।"

फुल्लू सहमत हो गया बात बिल्कुल ठीक है। उसे ऐसी दर्जनों लॉटरियों का खयाल आ गया जिनमें उसने इंट्री भेजी थी, मगर आज तक उनका परिणाम नहीं आया।

दोनों इस विषय पर कई दिनों तक बातचीत करते रहें। हर कोण से इसके नफा-नुकसान को टटोलते रहें और प्रारूप तय करते रहें।

एक दिन लोगों ने देखा - फुल्लू की दुकान के साईनबोर्ड के ऊपर एक बड़ा-सा बैनर लगा है - "प्रसिद्ध सिने अभिनेत्री माधुरी दीक्षित का जन्म दिन समारोह। आप सभी नि:शुल्क स्पेशल माधुरी चाट और नि:शुल्क लॉटरी ड्रॉ के कूपन के लिए आमंत्रित हैं।" ग्लोबल स्नैक्स कॉर्नर के मालिक चिरंजी का तो जैसे माथा ही ठनक गया। उसने सामने से ही देख लिया - दुकान की दीवारों पर माधुरी की कई मुद्राओं में मुस्कुराती आलीशान फ्रेमों में मढ़ी हुई बड़ी-बड़ी तस्वीरें टांग दी गयी हैं और बड़े-बड़े कट आउट लगा दिये गये हैं। एक बोर्ड पर उसकी तमाम फिल्मों के नाम और झलकियाँ उसके विभिन्न यादगार किरदारों की कैश काउंटर पर रखे म्यूजिक सिस्टम द्वारा पर्दे पर माधुरी द्वारा गाये गीतों की मंद-मंद स्वरलहरियाँ पीछे की दीवार पर लगे साउंडबॉक्सों से झरती हुई एक रंगीन पोस्टर माधुरी लकी ड्रॉ का, जिस पर अंकित - "प्रथम पुरस्कार - मारूति ८००, इसके अलावा दस-दस हजार के पचास अन्य पुरस्कार एक कूपन माधुरी चाट खाने पर फ्री।" इस तरह पूरी दुकान माधुरीमय।

१५ मई को सबने देखा कि वहाँ स्वप्नलोक जैसा एक मनोहारी दृष्य उतार दिया गया। मार्केट के मुहाने पर एक भव्य तोरण-द्वार बनाया गया जिस पर लिखा था - लांग लाइव माधुरी। युवा दिलों पर बिजली गिराने वाली माधुरी के दो हसीन कट आऊट किनारे में चस्पां कर दिये गये थे। इस द्वार से लेकर उसकी दुकान तक मिनी बल्वों की अद्भुत साज-सज्जा थी। दुकान के सामने २५ पौंड का एक विशाल बर्थ डे केक सजा हुआ था। केक काटने के लिए मुख्य अतिथि के तौर पर जिले के एस पी आमंत्रित थे। स्ट्रिंगर गोरेलाल आखिर कब काम आता, इतनी पहुँच तो उसकी थी ही। अपने उद्देश्य को व्यक्तिगत से सामाजिक रंग देने लिए उसने शहर में स्थित यतीम और विकलांग बच्चों के शरणस्थल चेशायर होम में एक माधुरी मेला आयोजित कर दिया, जिसमें बच्चों के लिए मुफ्त में चाट, गोलगप्पे, आइसक्रीम, जलेबी आदि खाने की व्यवस्था कर दी गयी। उसमें दो-तीन किस्म के झूले भी लगा दिये गये। बच्चों ने माधुरी को कम और फुल्लू को ज्यादा दुआएँ दीं।

शहर में धूम मच गयी। अगले दिन हर स्थानीय अखबार में फुल्लू छाया हुआ था। गोरेलाल का सब एडीटर कहा करता था - एक हीरो की तलाश करो, एक स्टोरी बनाओ उसे हीरो और स्टोरी दोनों ही मिल गयी थी। लोगों ने उसकी इस दीवानगी का खूब आनंद लिया, कुछ अखबार पढ़कर और कुछ दुकान में चाट खाकर।

फुल्लू अब विदूषकीय कौतूहल और विस्मय का एक चर्चित किरदार हो गया था। लोग उसे एक बार देखना चाहते थे। अत: दुकान में आमद-रफ्त बढ़ गयी। आनेवाले चाट भी खाने लगे। चाट के कुछ पुराने परंपरागत ग्राहकों का आकर्षण फिर लौट आया। उसकी इश्कमिजाजी से प्रोत्साहित होकर कुछ नयी उम्र के प्रेमी जोड़े मिलने और गपियाने की दृष्टि से इस दुकान को एक निरापद जगह समझने लगे। अब चाट में उसने कई नये फीचर जोड़ दिये थे। पकौड़ी चाट, टिकिया चाट, सिंगाड़ा चाट, चाट बत्तीसी, चाट छप्पन भोग चाट में गठिया तथा टोमॅटो और चिल्ली सॉस आदि भी मिलाया जाने लगा। साथ में खट्टा, मीठा और झाल के अलग से द्रवीय घोल अपनी रुचि के अनुसार जितना जो चाहे मिला लें। मतलब चाट में चाट कम और ठाठ ज्यादा हो गया।

अब फुल्लू माधुरी के प्रति दीवानगी दिखाने का हर अवसर लपक लेने लगा। हॉल में माधुरी की कोई फिल्म लगती तो बाहर खड़े होकर वह अंदर जानेवाले दर्शकों में टॉफियाँ या आईसक्रीम बँटवा देता। माधुरी ने अमेरिका के डॉक्टर राम नेने से शादी कर ली तो लोगों ने समझा कि फुल्लू बड़ा मायूस होगा, लेकिन उसने खुश होकर शिशु निकेतन के बच्चों में एक महीने तक दूध वितरण करवाया। गोरेलाल ने इसकी रिपोर्ट देते हुए अखबार में लिखा, "फुल्लू ने साबित कर दिया है कि उसके प्रेम में कोई स्थूल माँसल आकांक्षा नहीं हैं, बल्कि वह सात्विक किस्म के आनंद का रसिया है। माधुरी की खुशी में वह अपनी खुशी देखता है, अन्यथा तो घर में उसकी पत्नी पिंकी है जो उसे हर तरह से पसंद हैं और माधुरी से उसके प्रेम में कोई बाधक नहीं बल्कि मददगार है।"

स्थानीय पत्रकारों की अड्डेबाजी उसकी दुकान में काफी बढ़ गयी। इनके लिए अघोषित रूप से यहाँ खाना-पीना नि:शुल्क था। भुगतान में, यह अनकहा समझौता था कि उसे वे खबरों में बनाये रखेंगे। खबरों में बने रहते-रहते जैसे उस पर सचमुच ही एक नायकत्व की खब्त सवार होने लगी। महज दुकान चलाने के लिए जिसे फिड़के के तौर पर इस्तेमाल किया गया था, उसमें वह बहुत गहराई से संलिप्त होने लगा। दुकान चलने लगी थी, पत्नी चाहती थी कि घर में सुख-मौज के कुछ सामान आ जायें एयरकंडीशनर, माइक्रोवेव ओवन, म्यूजिक सिस्टम, वाशिंग मशीन, कोई पुरानी कार, ताकि जीवनस्तर कुछ बेहतर लगने लगे। लेकिन फुल्लू था कि इससे ज्यादा जरूरी समझता था ओल्डएज होम में कंबल वितरण करना, शिशु निकेतन में दूध वितरण करना, चेशायर होम में फल, मिठाई और दवाई वितरण करना और १५ मई को पिछले से बड़ी धूमधाम, बड़ा केक, बड़ी साज-सज्जा।

ऐश्वर्य और विलासिता के सामान तो बहुत लोगों के पास होते हैं, उन्हें कोई नहीं जानता, लेकिन वह पाँच हजार का ही कंबल बाँट देता है, दस हजार खर्च करके केक कटवा देता है, चाट खिला देता है तो पूरे शहर में उसकी चर्चा हो जाती है, कितने गरीबों की दुआएँ मिल जाती हैं। पत्नी को लगता कि यह सब लफ्फाजी और बकवास है। इस सस्ती लोकप्रियता से वह आराम नहीं हासिल हो जाता जो कार दे सकती है, एयरकंडीशनर दे सकता है। ऐसे दर्जनों लोग हैं इस शहर में जिनके पास करोड़ों की सम्पत्ति हैं, समाज-सेवा पर वे लाख-दो लाख खर्च कर दें तो उनकी सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़नेवाला, फिर भी उन पर कोई जूँ नहीं रेंगती, फिर हमें ही क्या पागल कुत्ते ने काटा है? पत्नी उसकी खब्त, सनक और झख से परेशान होने लगी। उसे लगने लगा कि अपने बीवी-बच्चों से ज्यादा इसके लिए माधुरी की अमूर्त और निराकार दीवानगी की अहमियत है।

फुल्लू ने अपनी पत्नी पिंकी के व्यावसायिक अविवेक को कोसते हुए कहा, "तुम औरतों को सिर्फ ईर्ष्या करना आता है तह में जाकर समझना नहीं आता। आज का जमाना निवेश पर आधारित है हम माधुरी के नाम से जो भी करते हैं उसे तुम एक निवेश मानकर गले से उतारना सीखो।"

पिंकी ने झुँझलाते हुए कहा, "निवेश तो हो गया लोगबाग जान गये कि एक दुकान है जहाँ हर चीज पर माधुरी दीक्षित के नाम की मुहर है अब और क्या करोगे, माधुरी के नाम से ताजमहल बनाओगे?"

"काश, मैं ताजमहल बना पाता लेकिन तुम्हें शायद पता नहीं हैं कि ताजमहल सिर्फ इश्क करने से नहीं बन जाता। उसके लिए शहंशाह भी होना पड़ता है और दौलतमंद भी। प्यार में ताजमहल आज भी दुनिया का सबसे बड़ा इन्वेस्टमेंट है। शहंशाह इस दुनिया में नहीं है फिर भी लाभांश उन्हें आज भी मिल रहा है।"

"जिसे दुनिया सात्विक और शुद्ध प्यार का इज़हार मानती है उसे तुम निवेश कह रहे हो? प्यारके लिए यही जगह है तुम्हारे मन में?"

"प्यार का इजहार मन में अमूर्त हो तो वह ताजमहल से भी बड़ी चीज बनकर रहता है। लेकिन जब उसे कोई भौतिक आकार देता है तो वह न चाहते हुए भी एक निवेश की शक्ल अख्तियार कर लेता है। निवेश जरा वाणिज्यिक शब्दावली हो जाता है अन्यथा ध्यान से देखो तो घर-परिवार में दायित्व-निर्वाह के नाम पर जो हो रहा है वह एक प्रकार का निवेश ही तो है!"

"मुझे लगता है तुम पूरी तरह बनिया हो गये हो जो हर चीज को नफा-नुकसान के तराजू पर तौलने लगे हो। माँ-बाप अपने बच्चों के लिए जो करता है, पति-पत्नी एक-दूसरे के लिए जो समर्पण भाव रखते हैं, बहन भाई में जो एक रिश्ते की पवित्रता होती है, क्या यह सब कुछ निवेश पर टिका है?"

"ध्यान से देखो तो बेशक सब कुछ निवेश पर ही टिका है। पिता बेटे को पढ़ा रहा है, बेटी के लिए दहेज दे रहा है, हम पड़ोसी की मदद कर रहे हैं एक रिटर्न पाने की अपेक्षा से सारा कुछ निवेश ही तो है। हमारा भविष्य बढ़िया रहे हमारा परलोक बढ़िया रहे अगला जन्म बढ़िया रहे यह कामना उस लाभांश की तरह ही तो है जिसके निवेश के उपरांत प्राप्त होने की आशा रहती है।"

पिंकी को लगा जैसे उसके सामने उसका पति नहीं कोई अजनबी मुखातिब है जिसके दिमाग पर खुली अर्थव्यवस्था की तरह एक साथ कई देश के झंडों के रंगों का घालमेल हो गया है। हर चीज में बाज़ार और बाज़ार में हर चीज ढूँढ़ने लग जानेवाले उस आदमी ने माधुरी नाम को एक ब्रांड बना लिया है और इस नाम का जलाल यह है कि वह पति होने को भी एक व्यवसाय मानने लगा है। क्या दाम्पत्य अब खरीदफरोख्त के गणित से संचालित होगा?

गोरेलाल को लगने लगा कि फुल्लू सचमुच माधुरी को दिलोजां से चाहने लगा है। पड़ोस के दुकानदार भी लक्ष्य करने लगे कि फुल्लू की प्रकृति कुछ-कुछ असामान्य होने लगी है। उसके जरा विशिष्ट होते जाने पर उन्हें चिढ़ तो थी ही, उसे सुनाकर कुछ लोग माधुरी के बारे में उल्टी बातें, "माधुरी माने हुस्न का बियर बार' 'फ्लॉप फिल्म की फूलन' 'दांत दिखाये, कमर लचकाये' आदि कहने लगे। कुछ लौंडों ने तो तंज और फब्तियों 'लल्लू जगघर चाटवाला, जपे माधुरी नाम का माला', 'कौआ चले हंस की चाल, काले रंग का नहीं खयाल' 'धागा खींचा नेने ने गुड्डी उड़ी विदेश, मजनू की नानी मरी लगी नाक में ठेस' आदि की कुछ तख्तियाँ और पोस्टर बना लिये, जिन्हें वे फुल्लू के आने-जाने के रास्ते में सड़क पर या दीवार पर चिपका देते या फिर उसकी दुकान की शटर के नीचे डाल देते। वह बेजब्त हो जाता, उखड़ जाता, बिगड़ जाता। पिंकी ने इसे झिड़ककर समझाने की कोशिश की, "माधुरी तुम्हारी खरीदी हुई जायदाद नहीं हैं, वह सबकी है। कोई उसे गाली दे या प्यार करे, तुम उसे रोकनेवाले कोई नहीं होते।"

फुल्लू जानता था कि यह बात ठीक है, फिर भी माधुरी के प्रति कोई अपशब्द सुनकर वह खुद को बेकाबू हो जाने से रोक नहीं पाता था। चिढ़ानेवाले का मकसद पूरा हो जाता। उसके चिर प्रतिद्वंद्वी चिरंजी की इन हरकतों की पृष्ठभूमि में खास भूमिका रहती। वह रोज उसके खिलाफ कोई न कोई नया किस्सा 'जन्म दिन का बधाई कार्ड भेजा था तो उधर से उसका सेक्रेटरी का जवाब आया कि जरा होश में और अपनी औकात में रहो' 'सुबह माधुरी का माला जप रहा था, पत्नी ने देखा तो सिर पर चार-पाँच चप्पल दे मारा' ब्राज़ार में चला देता ताकि ग्राहक उसे सनकी समझकर भड़क जायें। मगर वह हैरान था कि ग्राहकों का उसके प्रति क्रेज और बढ़ता जा रहा था। शायद उसकी दीवानगी में निहित निश्छलता, पवित्रता और परदु:खकातरता से लोग उसके और भी कायल बनते जा रहे थे।

चिरंजी के ग्लोबल पिज्जा का जादू इतना क्षणभंगुर होकर रह जायेगा, इसकी उसने कल्पना तक नहीं की थी। वह फुल्लू के प्रभामंडल को खत्म करने के लिए उसी की तर्ज पर सोचते हुए दिमाग दौड़ाने लगा। उसे याद आया कि फुलुआ ने लॉटरी का झाँसा देकर सबको उल्लू बनाया आज तक उस घोषित लॉटरी का ड्रॉ नही हुआ। उसके मन में पहले तो आया कि इस मुद्दे को उभारकर उसे लफ्फाज साबित कर दें ताकि वह सबकी नज़रों में गिर जाये और खुद को सच्चा-सही साबित करने के लिए वह वाकई एक लॉटरी करवा डाले। फिर मन में आया कि ऐसा करने की जगह उसी के रास्ते पर वह भी क्यों न चलें? उसने जब बिना खर्च किये काम निकाल लिया तो इसे क्या जरूरत है खर्च करने की? लॉटरी घोषित करके ड्रॉ की एक-एक कर कभी न आनेवाली तारीख बढ़ाता जाये। उसने कोक बनानेवाली एक कंपनी के स्थानीय मैनेजर को पटाया, चूँकि इस ब्रैंड के पेय का बहुत बढ़िया कलेक्शन देनेवाला वह एक अग्रगण्य रिटेलर था। इस कंपनी की मदद से माधुरी के कार्यक्रम की उसने तैयारी शुरू कर दी। जोरदार प्रचार किया जाने लगा अमुक तारीख को शहर के सबसे बड़े स्टेडियम में माधुरी का लाइव शो। शो के लिए हर टिकट धारक को पिज्जा, कोक और लॉटरी कूपन फ्री। लॉटरी का ड्रॉ ऑन स्पॉट माधुरी द्वारा। प्राइज में कई ब्रैंड की कारें शामिल।

गोरेलाल ने फुल्लू को बताया कि उसका बिजनेस प्रभावित करने के लिए यह नहले पे दहला चाल चली जा रही हैं। एक बारगी फुल्लू को भी लगा कि सचमुच यह तो सरासर बदमाशी है। उसे करना ही था तो रवीना टंडन, ऐश्वर्या राय, प्रीति जिंटा, करिश्मा कपूर या रानी मुखर्जी नाइट करा लेता। जब वह देख रहा है कि उसके सामने माधुरी के लिए इतना कुछ हो रहा है, फिर माधुरी पर इसका क्या हक था? अगले ही पल उसे खयाल आया कि अगर इसने माधुरी को चुना है तो ठीक ही चुना है। माधुरी का मुकाबला किसी और से हो भी कहाँ सकता है। पूरी दुनिया में माधुरी तो सिर्फ एक ही है अव्वल, बेमिसाल, अभूतपूर्व, जिसके नृत्य और मुस्कराहट का कोई विकल्प नहीं, कोई सानी नहीं। चलो अच्छा है, उसकी एक जमाने की साध पूरी हो जायेगी। माधुरी को उसने आज तक पर्दे पर या चित्रों में ही देखा अब सामने साक्षात देख सकेगा। उम्मीद है एकदम पास से मिलने-बतियाने का उसे सुअवसर भी मिल जायेगा। निश्चित रूप से जब उसे मालूम होगा कि उसका ऐसा कोई फैन है जो सालों भर किसी खुदा की तरह उसकी इबादत करता है तो वह जरूर इंकार नहीं कर सकेगी।

माधुरी आयी आने की एक बड़ी कीमत लेकर बड़ी कीमत, जिसे चिरंजी ने और कोक कंपनीवाले ने एक जरूरी निवेश समझकर जुटाया किसी तरह। वे जानते थे कि यह कीमत शो के टिकट बेचकर बहुत हद तक वसूल ली जायेगी। उनका अनुमान सही साबित हुआ। चूँकि देखनेवालों की भेड़ियाधसान भीड़ हज़ारों में जुटी पूरे शहर

में मानो माधुरी का बुखार छा गया। चिरंजी मन ही मन सोचता रहा कि कितने पागल हैं यहाँ लोग कि उस ग्लैमर को देखने के लिए मरे जा रहे हैं जिससे उन्हें कुछ हासिल नहीं होना है। शो देखनेवालों में ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे सभी थे नहीं था तो एक फुल्लू, जिसके लिए चिरंजी ने खास तौर पर हिदायत दे रखी थी कि वह किसी भी तरह अंदर दाखिल न हो सके। अखबारों में माधुरी के साथ चिरंजी के धुआँधार फोटो छपने लगे।

गोरेलाल इस विडंबना पर हैरान था कि माधुरी के साथ सचमुच जिसका फोटो होना चाहिए उसे धकियाकर किनारे कर दिया गया। यहाँ तक कि उसे एक झलक तक देखने का अवसर नहीं दिया जा रहा। जो चिरंजी माधुरी के बारे में हमेशा अनर्गल, भी और अश्लील अफवाहें इज़ाद करता रहता था, वह आज खुद को इसका सबसे बड़ा कद्रदान सिद्ध करने में लगा था। फुल्लू रात-दिन उसका कीर्तन करता रहता था, मगर आज किसी खतरनाक वायरस की तरह वह परे हटा दिया गया।

गोरेलाल के लिए यह रवैया असह्य हो गया। उसने अपनी पत्रकार की हैसियत दिखाकर होटल में माधुरी से मुलाकात की और फुल्लू के बारे में विस्तार से बताया कि उसके नाम पर वह क्या क्या आयोजन करता है किन-किन लाचार और उपेक्षित लोगों में भलाई और पुण्य का काम करता है उसकी फिल्मों को कितनी आसक्ति और बेताबी से एक उत्सव की तरह देखता है किसी देवी की तस्वीर की तरह उसके फोटो के मढ़े फ्रेमों से दुकान की दीवारें सजा रखी है उसके फोटो का लॉकेट तक बनवाकर उसने गले में पहन रखा है।

माधुरी के चेहरे पर यह सब सुनकर अच्छा भाव आने की जगह एक हिकारत का भाव उभर आया। उसने कहा, "ऐसे-ऐसे बेढंगे लोगों के कारण मेरी छवि खराब होती है। ये लोग मुझे एकदम चीप बना देते हैं। अब भला चाटवाला, सफाईवाला, रिक्शावाला, कबाड़ीवाला मेरे लिए इस तरह पागलपन दिखायेंगे तो संभ्रांत समाज मुझे क्या महत्त्व देगा?" माधुरी की नजर अचानक सामने खड़े एक पुलिस ऑफिसर पर पड़ी जो उसकी सुरक्षा के लिए विशेष तौर पर नियुक्त था और अपने आवभाव से यह कई बार जतला चुका था कि वह माधुरी का घनघोर प्रशंसक है। गोरेलाल की शिकायत पर अपना कान उसने भी खड़ा किया हुआ था। माधुरी ने उसे संबोधित किया, "सुन रहे हो ऑफिसर, तुम्हारे रहते इस शहर में मेरे नाम पर लोग क्या-क्या फूहड़ तमाशा कर रहे हैं? तुम कहते हो कि मेरे बहुत बड़े फैन हो, फिर भी क्या इस तरह की भौंडी हरकतों पर अंकुश नहीं लगा सकते?"

ऑफिसर को लगा कि माधुरी जी ने उसे कुछ करने के लिए कहकर मानो उसके जीवन को सार्थक कर दिया। इतनी बड़ी स्टार उसे कुछ कह रही है, क्या कह रही है, जायज या नाजायज यह मायने नहीं रखता बस वह कुछ कह रही है और जो कह रही है उसका पालन होना चाहिए।

गोरेलाल को लगा कि जैसे कोई बड़ा हवाई जहाज क्रैश होकर ठीक उसके सामने गिर पड़ा। लाखों-करोड़ों की कीमत वाला और बहुत ऊपर उड़ने वाला हवाई जहाज जब जमीन पर गिरता है तो तहस-नहस होकर किरचों में तब्दील हो जाता है।

हवाई जहाज का क्रैश होकर गिरना हमेशा उसे विचलित कर देता रहा है आज भी वह विचलित हुए बिना न रह सका। गोरेलाल ताज्जुब में पड़ गया कि वह तो फुल्लू का भला करने चला था फिर उसका बुरा क्यों होने लगा? क्या उससे कोई चूक हो गयी? या कहीं ऐसा तो नहीं कि माधुरी जैसे लोगों के लिए अच्छाई-बुराई की परिभाषा अलग है? उसका माथ एकदम चकरा गया। उसने एक तल्ख रिपोर्ट लिखी कि फुल्लू जैसे अदना व्यक्ति की भावनाओं का इन नामचीन फिल्मी हस्तियों के लिए बस उतना ही महत्त्व जितना किसी रैपर या पैकिंग का होता है अंदर का माल यूज किया और बाहर का थ्रो कर दिया। यही फुल्लू अगर साधारण चाटवाला की जगह किसी पंचसितारा होटल का मालिक होता या फिर प्रसिद्ध चित्रकार, पत्रकार या मंत्री तो इनकी जिह्वा से कृतज्ञता के संभाषण कभी खत्म नहीं होते।

यह रिपोर्ट सुबह छपी मगर उस पुलिस ऑफिसर ने शाम में ही अपनी खैरख्वाही जताकर पीठ थपथपवा ली और कृतार्थ हो गया। उसने दुकान जाकर माधुरी के सारे ब्लोअप, पोस्टर, कटआउट और सीडी-कैसेट जब्त कर लिये। दीवारों पर लिखे फिल्मों के नाम और गानों के बोल आदि पर अलकतरा पोतवा दिया। ऐसा लग रहा था जैसे वह माधुरी का पक्ष नहीं ले रहा, बल्कि विरोध कर रहा है। फुल्लू की तो जैसे अक्ल ही गुम हो गयी थी। उसे कहीं से भी समझ में नहीं आ रहा था कि किसी को अगर वह ईश्वर की तरह ऊँचा स्थान दे रखा है तो इसमें गुनाह क्या है? उसकी पत्नी पिंकी पर भी यह बर्बर कार्रवाई नागवार गुजर गयी थी, हालांकि इसी के साथ उसके मन का आधा हिस्सा मुदित भी था कि चलो अच्छा हुआ इसे एक तमाचा लगा मुँह पर ज़मीन पर रेंगनेवाले चले थे आसमान में उड़ान भरने अब अक्ल ठिकाने आ जायेगी। गोरेलाल एक अपराधबोध से एकदम आहत महसूस कर रहा था उसी के कारण बेचारे फुल्लू के जिगर को लहूलुहान होना पड़ रहा है। उसने अपना तेवर सख्त बना लिया, "सुनो फुल्लू, ऐसी अहमक और कमजर्फ औरत का अपनी दुकान और ख्यालात से नामोनिशान तक मिटा दो। तस्वीरें ही लगानी हैं तो मदर टेरेसा की लगा दो और जो भी आयोजन करने हैं कल्याण-कार्य करने हैं, उनके नाम पर करो।"

पिंकी ने भी लगे हाथ अपने मन मुताबिक झोंके के साथ जरा उड़ लेने का आनंद उठाते हुए अपना इरादा सामने रख दिया, "मेरा भी मन एकदम घिना गया है इस माधुरी-फादरी से। अब इसके नाम पर तुम कुछ भी नहीं करोगे दुकान चले या न चले। सभी लोग ऐसे टोटके और स्वांग रचकर ही अपना व्यवसाय नहीं चलाते। अगर माधुरी के नाम से तुमने आगे कुछ किया तो भगवान कसम मैं तुम्हें छोड़कर मायके चली जाऊँगी और फिर कभी वापस नहीं आऊँगी।"

फुल्लू बहुत असहाय नज़रों से कभी गोरेलाल को, कभी पिंकी को और कभी अपनी बदसूरत-सी हो गयी दुकान को निहार रहा था। उसके पास बोलने के लिए मानो मुँह ही नहीं रह गया था। दूर से देखकर चिरंजी खुश हो रहा था और उसे लग रहा था कि उसने फुल्लू को एक जोर की पटकनी दे दी।

गोरेलाल फिर एक प्रहारात्मक रिपोर्ट लिखने के लिए तड़फड़ा उठा। मगर पुलिस ऑफिसर ने उसे और उसके संपादक को भी चेता दिया कि माधुरी के खिलाफ मुहिम बंद कर दे, नहीं तो उन्हें इसकी बड़ी कीमत चुकानी होगी। फुल्लू मन मसोसकर रह गया। काश वह अखबार का खुद मालिक और संपादक होता। अखबार में कोई रिपोर्ट न छपने के बाद भी उसने देखा कि दुकान की कहानी कानों-कान पूरे शहर में फैल गयी और अगले दिन दुकान में आनेवालों की संख्या और भी बढ़ गयी। सभी देखना चाहते थे कि जो हवाई जहाज आसमान में उड़ता है वह क्रैश होकर जमीन पर कैसे ढेर हो जाता है।

भीड़ को देखकर चिरंजी को मानो फिर साँप सूँघ गया था।

कुछ अर्सा बीता चुप-चुप रहनेवाला फुल्लू अचानक फिर सुर्खरू हो उठा। वह माधुरी के बेटा होने की खुशी में एक उत्सव मनाने की तैयारी करने लगा। गोरेलाल, पिंकी, चिरंजी आदि हैरान रह गये। पिंकी तमतमाकर मायके चली गयी गोरेलाल ने भी दुकान पर न आने की कसम खाली फुल्लू के आसपास अब अपना कोई नहीं रह गया हालाँकि दुकान में ग्राहकों की संख्या और बढ़ गयी।

(१६ जून २००३ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

पगडंडियों की □हटें

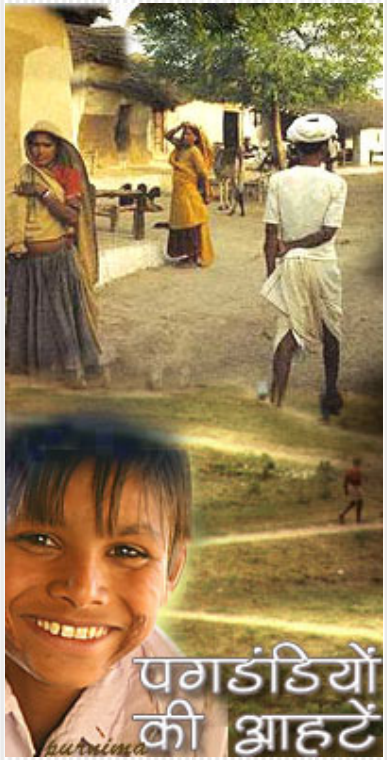

मैं कुबेर प्रसाद।

भुखमरी की ज़मीन से चल कर आज वातानुकूलित कक्ष और हवाई जहाज़ तक की यात्रा को मुड़कर देखता हूँ तो पीछे छूटी हुई सारी पगडंडियाँ, कँटीली, सर्पीली, डरावनी, सुहावनी, एक-एक कर उभरने लगती हैं।

स्कूली जीवन की पहली ही पगडंडी दंश देनेवाली साबित हुई थी। मैं एक सवर्णबहुल मास्टरों और विद्यार्थियों वाले स्कूल में अक्सर आगे की बेंच से धकियाकर पीछे की बेंच पर पहुँचा दिया जाता था। मैं गलचुटका और सीकिया-सा असहाय दिखनेवाला कमज़ोर लड़का इसका अभ्यस्त हो गया था। मुझे बाउजी ने कहा था कि किसी भी दुत्कार-फटकार और दाँव-पेंच का बुरा नहीं मानना है और सिर्फ़ अपनी पढ़ाई पर ध्यान देना है। मैं अपनी पढ़ाई पर ध्यान दे रहा था और कक्षा में अव्वल स्थान पर पहुँच गया था। आंतरिक दशा भले ही अव्यक्त थी लेकिन मन में जातीय सड़ाँध और भेद-भाव पर एक घृणा समाती जा रही थी।

मैं मानकर चल रहा था कि जातीय वैषम्य की हिकारत मुझे स्कूल में प्रोत्साहन और प्रशंसा का कोई अवसर नहीं आने देगी। मैं इसी रेगिस्तान मन:स्थिति में था कि एक मास्टर रितुवरन बाबू की आँखों में मुझे आर्द्रता दिखने लगी। उन्होंने पितृत्व भाव से बुलाकर मुझे कहा कि अगर कुछ समझने में दिक्कत हो तो निस्संकोच मेरे पास आ जाना। तुममें ललक है पढ़ने की और साथ ही स्पार्क भी है आगे बढ़ने की, इसे कम न होने देना।

इसके बाद उन्होंने मेरी हालत देखकर किताबें और कॉपियाँ दीं, मुफ़्त में ट्यूशन दिए, चूतड़ों पर फटे पैंट तथा पेट झाँकते शर्ट को सिलाने के पैसे दिए तथा खाली पैर को कई बार अपनी पुरानी चप्पलें दीं। इन सबसे बढ़कर एक बड़ी चीज़ भी उन्होंने दी और वह था संरक्षण...उन दबंग, शरारती और ज़ालिम लड़कों तथा पक्षपाती-जातिवादी शिक्षकों से जो मुझे चिढ़ाते थे और नीचा दिखाते थे। मैंने उसी समय समझ लिया था कि दुनिया में रितुवरन बाबू जैसे कुछ आला इंसान हमेशा होते हैं जो किसी भी खेमा और सीमा से ऊपर होते हैं।

उनकी यह सदाशयता भला टुच्चे लोगों को कहाँ रास आ सकती थी! उनके कद को छोटा करने के लिए एक शरारतपूर्ण चर्चा फैला दी गई कि रितुवरन बाबू ने कुबेरवा को अपना लौंडा बना लिया है। यह दुष्प्रचार एक तेज़ बदबू की तरह फैलते हुए मेरे गाँव में बाउजी तक पहुँच गया। इसमें निहित जातीय पेंच वे समझ गए और बहुत दुखी हुए। उन्होंने मुझे एक पंक्ति की हिदायत दे दी कि इस बदनामी के कीचड़ से निकलने का उपाय यही है कि मन पर पत्थर रखकर मास्टर जी से एक दूरी बना लो। संभवत: उन्होंने रितुवरन बाबू से खुद भी मुलाकात कर ली थी और उनसे हाथ जोड़ लिया था कि मेरे बेटे को इस बदनामी से बख्श दीजिए। कैसी विडंबना थी कि एक बाप किसी

कृपालु मास्टर से अपने बेटे को उनकी छत्रछाया में रखने की विनती करने की जगह उनसे अलग रहने का आग्रह कर रहा था। मेरा अंतस एकदम लहूलुहान हो गया। मास्टर जी अपने स्टाफ़ में और मैं अपनी कक्षा में बिल्कुल अलग-थलग और बहिष्कृत-सा हो गया था।

मैंने यहीं से एक बागी भ्रूण अपने दिमाग़ में प्रवेश करते पाया। वह भ्रूण पूरी दास्तान लिखने के लिए मुझे बेचैन करने लगा। चूँकि यह ऐसा प्रसंग था कि मैं किसी से कह भी नहीं सकता था। फिर इस सारे प्रकरण को मैंने रो-रोकर काग़ज़ पर उतारा था, जिस पर स्याही की लकीरें कम थीं और आँसुओं के धब्बे ज़्यादा थे।

मैं अपने उस जाति संक्रमित विद्यालय से मैट्रिक में शामिल डेढ़ सौ छात्रों में अकेला प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुआ था। रितुवरन सर अपनी खुशी व्यक्त करने से खुद को रोक न सके थे और किसी की मार्फ़त मेरे घर पेड़े से भरी एक बड़ी खोचड़ी भिजवा दी थी। मिठाई मेरी पसंदीदा चीज़ कभी न रही, चूँकि अभावों ने मिठाई की सोहबत में जाने के मौके ही नहीं दिए। ज़्यादा क़रीबी नमक-मिर्च से ही रही। ग़रीबों के भोजन में नमक-मिर्च सबसे सुलभ और सस्ता व्यंजन होता है। फिर भी उन पेड़ों ने मुझे एक अजीब अलौकिक आस्वाद दिया था। आज भी, जब उम्र के दो हिस्से बीत चुके हैं और अब मैं गुरबत की ज़िंदगी से लगभग निकल आया हूँ, मिठाई में मेरी बहुत दिलचस्पी नहीं है, उन पेड़ों की जब मुझे याद आ जाती है तो ऐसा लगता है जैसे मैंने उन्हें अभी-अभी खाए हैं। मैं कह सकता हूँ कि वैसी स्वादिष्ट मिठाई मैंने आज तक नहीं खाई। स्कूल से निकलने के बाद रितुवरन सर से मेरी दोबारा न कभी मुलाक़ात हुई और नाहीं कोई पत्राचार हुआ। लेकिन मुझे ऐसा कभी नहीं लगा कि वे मुझसे दूर हैं। मन में हमेशा उनसे एक अप्रत्यक्ष संवाद जारी रहा। आज भी लगता है कि वे आसपास ही कहीं हैं जो मुझे कदम-कदम पर निर्देशित कर रहे हैं, मेरी सफलताओं और उपलब्धियों पर प्रसन्न हो रहे हैं तथा मेरी बेवकूफ़ियों और ग़लतियों पर फटकार लगा रहे हैं। रितुवरन सर ही मेरे जीवन के पहले और आख़िरी गुरु रहे गए।

अधूरे इंटर तक यानी सिर्फ़ सत्रह साल ही रहा मैं गाँव में...लेकिन इतने ही समय में गाँव ने मुझे इतने जलवे दिखाए कि ये सत्रह साल सत्तर साल जितने अनुभव देने की प्रतीति करा गए। क्या-क्या नहीं भोगा, सहा और झेला मैंने! गाँव में चलने वाले किस मेहनत-मशक्कत और लानत-मलामत के धंधे से मेरा वास्ता न पड़ा! पिता के पाँच भाइयों वाला संयुक्त परिवार जब ईर्ष्या, द्वेष, असहयोग, अविश्वास और नीयत में खोट की ग्रंथियों के कारण बँटने लगा तो डेढ़-दो साल तक घर महाभारत का मैदान बन गया और वहाँ ज़बर्दस्त गाली-गलौज, मारपीट और थूकम-फजीहत का हार्रर दृश्य उपस्थित रहा। बाउजी सबसे बड़े थे, अत: उम्रदराज थे और दुर्बल भी। घर वे ही चलाते रहे थे, इसलिए फटेहाली और भुखमरी का उन्हें ज़िम्मेदार ठहराकर उनके छोटे भाई उन्हें अपने वहशीपन का निशाना बना लेते। बाउजी के निश्छल और बेबस आँसू मेरे भीतर एक बाग़ी तेवर और कठोर सतह सृजित करने लगे। मैंने अपनी छोटी उम्र को बड़ा कर लिया और पिता की तरफ़ से खुद को करारा जवाब बना लिया। अब उनपर किसी भी आक्षेप से मैं सीधी टक्कर लेने लगा। आज सोचकर मुझे ताज्जुब होता है कि उस छोटी उम्र में भी कैसे मैं अपने निष्ठुर चाचाओं से भिड़ जाया करता था!

घर जब बँट गया तो हिस्से में सिर्फ़ डेढ़ बीघा ज़मीन आई और आठ हज़ार का कर्ज़ लद गया। अपने खेत पर आश्रित होकर पूरा साल गुज़ारना मुश्किल था। कम से कम दो बीघा खेत हमें बँटाई के जुगाड़ करने पड़ते थे। मुझे अपनी उम्र थोड़ी और बड़ी कर लेनी पड़ी...अब मैं हल जोत रहा था...लाठा चला रहा था...बोझा ढो रहा था...कुदाल पार रहा था...मड़ुआ, मकई, धान, गेहूँ, सरसों, आलू, करेला आदि बो रहा था...काट रहा था...उन्हें घर ला रहा था...बाज़ार ले जा रहा था।

विडंबना थी कि उन दिनों मेरे गाँव में बँटाई की खेती भी आसानी से उपलब्ध नहीं थी। जिनके खेत थे उनके सौ नखरे उठाने होते थे। गाँव के हज़ारों बीघा ज़मीन एक ही आदमी पूर्व ज़मींदार रऊफ मियाँ के पास थी। इनसे बहुत थोड़ी ही बची ज़मीन गाँव के लोगों में दस-दस, पाँच-पाँच बीघों में बँटी थीं। इसलिए दो-चार को छोड़कर गाँव में ज़्यादातर लोग बँटाईदार थे। रऊफ बाबू अपना ज़्यादातर खेत बराहिल-मुंशी और नौकर-चाकर रखकर खुद ही आबाद करवाते थे तथा रौब एवं धाक बनाए रखने के लिए सौ-दो सौ बीघा बँटाई या मोकर्रिर पर मेहरबानी करने की मुद्रा में बाँट देते थे। इन मेहरबानी की ज़मीनों को हासिल करने के लिए गाँव में होड़ और मारामारी मची रहती थी। मुंशी का भाव बढ़ा रहता था...रऊफ बाबू की जी-हुजूरी एवं चिरौरी में लोग खुद को बिछा देते थे। ज़मींदारी जाने के बाद से रऊफ खुद रांची में रहने लगे थे। साल में सिर्फ़ दो बार गाँव आते थे, एक तो रमजान में पूरे एक महीने के लिए और दूसरा कभी भी अपनी सहूलियत देखकर।

रऊफ बाबू के आने-जाने और ठहरने में ऐसी नफ़ासत और शानो-शौकत समाई होती थी कि तंगी-फटेहाली में रहनेवाले, दुनिया की रईसी और ठाट-बाटवाले जीवन से अपरिचित मुझ जैसे गंवई लड़के उन्हें दूर से कौतूहलपूर्वक देखते और उनके भाग्य पर बहुत ईर्ष्या करते रहते। रऊफ साहब बहुत मोटे-थुलथुले थे। मोटा आदमी उन दिनों मुझे बहुत अच्छा लगता था। मैं सोचता था कि मोटा आदमी होना एक गौरव की बात है जो बहुत पौष्टिक, महँगा और बढ़िया भोजन करने से ही मुमकिन होता होगा। मुझे अपने इस दुर्भाग्य पर कोफ्त होती थी कि हमें ज़्यादातर मडुआ-खेसाड़ी जैसे मोटे और सारहीन अनाज खाने होते हैं, अत: ऐसा मोटा होने का सौभाग्य हमें कभी नहीं मिल सकता। रऊफ बाबू को कई नौकर-चाकर मिलकर कार से उतारते और चढ़ाते थे। वे अपने इस्टेट के भव्य दालान में गलीचोंवाली एक आलीशान आरामकुर्सी पर बिठाए जाते थे। बाबर्चीखाने में कई खानसामों की सक्रियता बढ़ जाती थी। पूरा गाँव घी, मसाले और सालन की तेज़ गंध से गमगमा जाता था। किसी के लिए यह खुशबू साबित होती थी तो किसी के लिए बदबू।

गाँव के प्राय: लोग हिंदू-मुसलमान सभी उन्हें सलाम करने जाते थे। ख़ासकर वे जिन्हें मुकर्रिर या बँटाई पर खेत चाहिए होते थे। वहाँ हरेक को अपना दुखड़ा रोकर फरियाद करना पड़ता था, जैसे कोई खैरात माँगने आए हों। मुंशी की जिसे तरफ़दारी मिल जाती थी उस पर रऊफ बाबू पसीज जाते थे।

घर बँटने के बाद मजबूरन बाउजी भी पहली बार सलाम करने गए थे। मुंशी ने पता नहीं किस खुंदक की वजह से पक्ष लेने की जगह लंघी मार दी थी। कहा था, "इससे खेती नहीं होगी हुजूर, देह में ताकत कहाँ है इसके पास। देखिए न कैसा सुखंडी लगता है।"

बाउजी ने घिघियाते हुए कहा था, "मेरा बेटा है सरकार...वह सब काम कर लेता है।"

मुंशी ने भेड़िए और मेंमने की कहावत चरितार्थ करते हुए फिर लंगड़ी लगा दी थी, "इसका बेटा तो अभी बहुत छोटा है हुजूर। ऐसे भी यह आदमी ठीक नहीं है। इसका बैल पिछले महीने हमारे एक कट्ठा गेहूँ चर गया था।``

रऊफ ने बाउजी को खा जानेवाली नज़रों से घूरते हुए हिकारत से कहा था, "क्यों बे मरदूद, बैल को बाँधकर रखने में क्या तेरे हाथ की मेंहदी छूटती है? आइंदा ऐसी शिकायत मिली तो हाथ-पैर तुड़वाकर रख दूँगा....जा भाग हरामी यहाँ से।"

बाउजी बहुत अपमानित और उदास होकर घर लौटे थे और बड़े भारी मन से मुंशी की मक्कारी का बयान करते हुए कहा था, "चलो हम तो इसी में संतुष्ट हैं कि बाबू साहेब ने हमें ज़्यादा जलील नहीं किया।"

बाउजी की सरलता और मासूमियत पर मैं अचंभित रह गया था...भला वह दुष्ट और क्या ज़लील करता! यों मुझे पता था कि रऊफ मियाँ खुद को गाँव का भाग्य-विधाता समझता है और अभी भी हुक्मरान वाले रौब में जीता है। किसी के खिलाफ़ अगर उसके पास चोरी, बेईमानी या छिछोरेपन की शिकायत मिल जाती, ख़ासकर अपने बँटाईदारों अथवा जन-मज़ूरों की, तो वह उन्हें बँधवाकर जूते एवं कोड़े तक लगवा देता था। मैं अपने हमउम्र लड़कों के साथ सहमा-डरा दूर से वह हौलनाक नज़ारा देखता रहता था। मुझे उसकी वह कार्रवाई बहुत बर्बरतापूर्ण और नृशंस लगती थी। बाउजी के साथ उसने जो बर्ताव किया था, उसके बाद तो उससे मुझे सख़्त घृणा हो गई थी।

उसी रोज़ रात की निस्तब्धता में उसकी कार के सामनेवाले शीशे पर किसी ने एक ज़ोरदार पत्थर दे मारा था। शीशा टूटने की झन्न की आवाज़ सुनते ही उसके अर्दलियों और बराहिलों ने काफ़ी भाग-दौड़ शुरू कर दी थी, पर कोई पकड़ा न जा सका था। सुबह गाँव के मुख्य-मुख्य लोगों को बुलाकर रऊफ मियाँ ने खूब गाली-गलौज की थी और भरपूर लथाड़ लगाई थी। गर्दन झुकाकर सब सुनते रहे थे। इस अनर्गल फजीहत के खिलाफ़ किसी को होंठ तक फड़फड़ाने की हिम्मत नहीं हुई थी।

पत्थर किसने चलाया, किसी को ज्ञात न हो सका। आज तक वह राज़ ही रह गया। आज मैं उस राज़ को उज़ागर कर रहा हूँ कि कार पर पत्थर मैंने चलाया था। किसी जुल्म के खिलाफ़ यह मेरा पहला प्रतिरोध था, जिसकी कहानी कागज़ पर नहीं वायुमंडल में उसी समय दर्ज़ हो गई थी। आज वायुमंडल से निकालकर मैं उसे कागज़ पर लिख रहा हूँ।

बुढ़ापे और बीमारी के चलते जब रऊफ मियाँ की अशक्तता बढ़ती गई तो हर चीज़ पर उनकी पकड़ ढीली होती गई। उनके भाई-भतीजे आपाधापी करके लूट-खसोट मचाने लगे और ज़मीनों पर कब्ज़ा जमा करके उन्हें औने-पौने बेचने भी लगे। गाँव में जो ख़रीदने लायक था उसकी चाँदी हो गई।

सबसे ज़्यादा ज़मीन जगदीश गोप ने ख़रीद ली और देखते ही देखते गाँव का वह एक बड़ा काश्तकार बन गया। अब गाँव पर रौब और हैकड़ी गाँठने का उसने खुद को एक अधिकृत सरगना बना लिया। वह अपनी धाक इस तरह फैलाता गया कि लोग उसे रऊफ मियाँ से भी खूंखार और बहशी समझने लगे। गाँव में कोई भी ज़मीन ख़रीदता या नया घर बनाता, उसकी छाती दुखने लगती। गाँव में वह एकछत्र बड़ा आदमी बनकर रहना चाहता था। कोई एक कोठरी भी उठाए तो यथासंभव टाँग अड़ाने का वह कोई न कोई बहाना ढूंढ लेता था।

घर बँटने के बाद बाउजी भी जैसे-तैसे दो कोठरी उठाने की जुगत में लग गए थे। जगदीश के पेट की मरोड़ शुरू हो गई थी। वह दसियों बार कोई न कोई नुक्स निकालकर लफड़ा खड़ा किए रहा और इस प्रकार हमें दो कोठरी उठाने में दो बरस से भी ज़्यादा वक्त लग गया। हम दोनों बाप-बेटे तंग-तंग हो गए। मैं उससे बेइंतहा नफ़रत करने लगा था, लेकिन अफ़सोस कि मैं उसका कुछ भी बिगाड़ने के लायक नहीं था। मैं क्या पूरे गाँव में आज तक कोई उसका कुछ न कर सका। जबकि शायद ही कोई छाती छूटी हो जिस पर उसने मूँग न दली हो। क्रूरता और तानाशाही वरतने में वह रऊफ मियाँ से कई गुना आगे निकल आया।

अपने घर में ही एक पट्टीदार चाचा के दो लड़कों को उसने गायब करवा दिया ताकि घर-खेत में उन्हें हिस्सा-बखरा न देना पड़े। उसके एक अन्य चाचा के जो दो-एक लड़के किसी तरह बच गए, उन्हें भी मार-पीट और लांछित-प्रताड़ित करते हुए विभिन्न मुकदमों में फँसवाकर उसने पस्त करवा दिया और फिर ख़ैरात देने की तरह टांड़-टिकुल में कुछ ज़मीन दे दीं।

खेत कब्जाने का तो जैसे उस पर नशा छा गया था। जैतुनियाँ मसोमात की बारह कट्ठा ज़मीन पर उसने ज़बर्दस्ती हल चढ़ा दिया। बेचारी को वह ज़मीन रऊफ मियाँ के एक दामाद ने उसकी बीमार बेगम की घनघोर तीमारदारी करने के एवज़ में उसे बतौर बख़्शीश दी थी।

रऊफ के हल जोतनेवाले कुछ हरिजन मजूरों ने उनकी दो बीघा ज़मीन पर अपनी विनम्र दावेदारी रोप दी थी कि ज़िंदगी भर उन लोगों ने उनकी चाकरी की...अब जब सारा कुछ बिक रहा है तो वे कहाँ जाएँगे और कैसे गुज़ारा करेंगे? रऊफ मियाँ के बेटों और कतिपय रिश्तेदारों की इस कार्रवाई पर मूक सहमति थी...चलो, जाने दो, दो बीघा की तो बात है, सब दिन गुलामी की है बेचारों ने, सिर छुपाने की झोपड़ी तो कम से कम बना लेंगे।

जगदीश को भला कहाँ हज़म होनेवाली थी यह उदारता! उसने इस सहानुभूतिपूर्ण दावेदारी पर भी अपना अतिक्रमण जाल बिछा दिया। रऊफ के एक बहनोई को पटाकर उसने उसका दस्तखत ख़रीद लिया, जबकि बहनोई का इस पर कोई हक नहीं था। मगर उसे तो बस एक पेंच चाहिए था। लड़ाई बहुत दिनों तक चलती रही। कभी उस ज़मीन पर लगी फसल हरिजन काट लेते...कभी भाड़े के गुर्गे की मदद से जगदीश काट लेता। अंततः जगदीश ने मामला अदालत में पहुँचा दिया। सुनवाई चल रही है...वर्षों गुज़र गए सुनवाई अब भी पूरी नहीं हुई।

उस ज़मीन पर आज भी हरिजनों के कब्ज़े की और गाँव की छाती पर बैठे जगदीश जैसे असुर के संहार की मुझे प्रतीक्षा है। अगर ऐसा हुआ तो जीवन की चंद हसीन खुशियों में से यह मेरे लिए एक बड़ी हसीन खुशी होगी। उसे जब वाजिब सज़ा मिल जाएगी तभी मैं गाँव में अपनी दो कोठरी बन जाने का इत्मीनान कर पाऊँगा। अन्यथा अब भी मुझे अपना घर अधबना लगता है और गाँव में जाकर भी मुझे उसमें ठहरना अच्छा नहीं लगता। बाउजी अब रहे नहीं, वहाँ सिर्फ़ माँ रहती है, वह भी माटी के पुराने घर में। अपनी बहू से वह त्रस्त और आतंकित न होती तो माँ को मैं अपने साथ ही रखता और जगदीश की छाया तक उस पर पड़ने नहीं देता।

जगदीश ने एक और बड़ा कहर ढाया था जो याद आकर मेरे दिमाग़ पर हथौड़े की तरह चोट करता है। गाँव में एक नौटंकी टीम थी जिसका नेतृत्व रफू मियाँ करता था। रफू मियाँ मेरी ही औक़ात का एक मामूली आदमी था, जो राजमिस्त्री का पेशा करके अपनी रोटी चलाता था। हमलोग अकसर छठ पूजा के समय तीन रात नौटंकी का आयोजन करते थे। हमारी टीम पूरे इलाके में मशहूर थी और हमारे शो देखने वालों की भारी भीड़ उमड़ पड़ती थी। रफू मियाँ हमारा डायरेक्टर था। वह एक हरफ़न मौला कलाकार था। वह नगाड़ा भी बजा लेता था, हारमोनियम भी और अभिनय भी कर लेता था। बहरेतवील, चौपाई, दौड़, दोहा, कजरी आदि कहने का ढंग हमें वही सिखाता था। नथाराम गौड़ और कृष्ण पहलवान की लिखी नौटंकी उसकी ख़ास पसंद थी। हमलोग कई बार नौटंकी खेलने दूसरे गाँवों द्वारा सट्टे पर बुलाए जाते थे। उस समय तक दाढ़ी मूँछ नहीं होने की वजह से रफू मियाँ अक्सर मुझे जनानी पाठ दे दिया करता था।

नौटंकी चूँकि रात भर चलती थी, इसलिए लोगों को बाँधे रखने के लिए बीच-बीच में प्रहसन एवं लौंडा-नाच की व्यवस्था भी रखनी पड़ती थी। रफू अगर मुख्य भूमिका में नहीं होता था तो प्रहसन (कौमिक) करने एवं लौंडे के साथ जोकरई करने की ज़िम्मेदारी उसी की होती थी। वह हँसाने-गुदगुदाने की कला में गज़ब का कमाल रखता था। गाँव की सामयिक घटनाओं पर प्रहसन के बहाने वह धारदार व्यंग्य कर लेता था। जगदीश के चरित्र और रवैये पर उसने एक प्रहसन रच लिया। इस प्रहसन में जगदीश को जगढीठ कहते हुए बताया गया कि इसने अमेरिका के राष्ट्रपति से गाँव की बगलवाली सकरी नदी को अपने नाम लिखवा लिया है। लिहाज़ा अब यह नदी इसकी व्यक्तिगत संपत्ति है। गाँव का कोई भी आदमी अब नदी में स्नान-ध्यान या दिशा-फरागत करने के लिए नहीं जा सकता।

इस प्रहसन का लोग हँसी से लोट-पोट होकर आनंद उठा रहे थे। इसी बीच जगदीश गुस्से से आग बबूला होकर मंच पर चढ़ आया और सारे दर्शकों के सामने अपने जूते निकालकर रफ़ू मियाँ को पीटने लगा। नौटंकीवाले हम सभी लड़के भौचक्के रह गए। क्या करें...क्या न करें, इस पशोपेश में घिरे ही थे तभी दर्शकों के एक समूह की ओर से प्रतिकार में जगदीश पर कुछ रोड़े-पत्थर बरसने लगे और उसे भागना पड़ा। नौटंकी यहीं रुक गई और ऐसी रुकी कि फिर कभी शुरू नहीं हुई। गाँव को जोड़ने के लिए जो एक सांस्कृतिक आयोजन की परंपरा थी, वह अंतिम रूप से ख़त्म हो गई।

रफ़ू मियाँ ने अब नौटंकी से मुँह मोड़ लिया। गाँव की समरसता और सामाजिक सौहार्द्य के लिए यह एक बड़ी क्षति थी। लेकिन सुर-ताल रफ़ू की साँसों में बसा था, अत: वह इससे अलग नहीं रह सकता था। लिहाज़ा अपने गाँव में कभी प्रदर्शन न करने की शपथ लेकर दूर जाकर प्रदर्शन करने के मंसूबे के साथ उसने एक नाच पार्टी बना ली जिसमें हमारे हाई स्कूल के चपरासी गनौरी कान्हू का बेटा सौखी नचनिया बन गया। सौखी ने आगे चलकर पूरे ज़िले में काफ़ी नाम कमाया।

गाँव की ये कुछ ऐसी घटनायें थीं जिनसे मेरा पूरा जीवन प्रभावित रहा। मैं यह मान चुका था कि गाँव मेरी तक़दीर है, जो जैसा भी श्याम-श्वेत है, मुझसे अलग नहीं हो सकता। लेकिन अप्रत्याशित रूप से नियति को शायद मुझ पर तरस आ गया और उसने मुझे तकलीफ़ों के भँवर से निकाल कर शहर में आने का मौका दे दिया। एक प्रतियोगिता परीक्षा पास करने में मैंने सफलता पाई और सिजुआ (धनबाद) की एक कोलियरी में मेकेनिकल अप्रेंटिस में मेरी बहाली हो गई। आज मैं सोचता हूँ कि अगर मुझे यह अवसर न मिला होता और गाँव में रहने को ही मुझे मजबूर होना पड़ता तो क्या मैं यों ही शांत, शरीफ़ और चुपचाप बना रहता? मुझे बाउजी या अन्य परिवारजनों की तरह भूख ज़्यादा बर्दाश्त नहीं होती थी। मुझे वे लोग आँख में बहुत चुभते थे जिनके घर में इफ़रात अन्न रखे हुए सड़ रहे होते थे अथवा जिनके अनगिनत खेतों में फसलें लहलहा रही होती थीं। इस मानसिकता में ज़ाहिर है या तो डकैती या फिर नक्सलवाद का रास्ता मुझे बहुत आकर्षित करता था।

मैं शहर आ गया, यह मेरी अद्भुत कायापलट थी। अब मैं जूते पहन सकता था, रोज़ साबुन लगा सकता था, पतलून पहन सकता था, हर दिन चपाती और चावल खा सकता था। मुझे वे दिन नहीं भूलते कि मैं एक मटमैला पाजामा, एक घिसा हुआ बुशर्ट और एक टुटही हवाई चप्पल पहनकर लिखित परीक्षा देने आया था और अपने गोतिया घर के एक चचेरे भाई के यहाँ ठहरा था। मेरा हुलिया देखकर मेरे भाई को कतई उम्मीद नहीं थी कि मैं किसी प्रतियोगिता परीक्षा में पास हो सकता हूँ। उसके अनुमान को धत्ता बताते हुए रिटेन में मैं पास हो गया। मेरा वह भाई अचंभित रह गया। उसके पास-पड़ोस में उसके कई साथियों के साले और भाई आदि कई महीनों से यहाँ रहकर तैयारी कर रहे थे और वे पास नहीं हो सके थे। भाई की आँखों में मेरे लिए गर्व उभर आया था। उसने इंटरव्यू में बैठने के लिए मुझे अपनी पतलून और शर्ट दी, ताकि मैं

ज़रा ठीक-ठाक और थोड़ा स्मार्ट दिखूँ। मेरे दिमाग़ में उस पतलून और शर्ट के रंग स्थायी रूप से दर्ज़ हो गए थे, चूँकि मेरे जिस्म पर चढ़नेवाली वह जीवन की पहली पतलून और शर्ट थी, जो पहले की पहनी हुई और उधार की थीं। मैं अपने उस भाई का आज भी कर्ज़दार हूँ।

शहर में एक साल तक मुझे एकदम मन नहीं लगा था और गाँव मुझे बेतरह याद आता रहा था। रोज़ शाम होते-होते मुझे ऐसा लगता था कि आज मैं निश्चित रूप से गाँव वापस लौट जाऊँगा।

अब माटी जोतने-कोड़ने वाले हाथ लोहे छिलने, काटने और तराशने के हुनर सीखने लगे थे।

गाँव की तरह अब कारखाने की नब्ज़, नीयत, नाइंसाफ़ी और नासूर मैं पहचानने लगा था। मैंने बीस वर्षों तक लेथ, शेपर, स्लॉटर, ड्रिलर, ग्राइंडर आदि मशीनों पर लोहे छिले। मशीनों के शोर में दबे और दफ्न हुए कई ऐसे किरदार मुझे मिले जो भुलाए नहीं भूलते और मन में एक जुगनू की तरह हमेशा टिमटिमाते रहते हैं।

मैंने गाँव की तरह कारखाने और कोलियरी को भी अपनी तक़दीर मान लिया था, लेकिन जैसे गाँव से मुझे मुक्ति मिल गई, वैसे ही कारखाना और कोलियरी ने भी अपनी जकड़न से मुझे मुक्त कर दिया। वहाँ मुझ जैसे लोगों के लिए आगे बढ़ने का कोई रास्ता नहीं था। एक बार आपने मज़दूर में नाम लिखा लिया तो फिर उम्र भर पसीने, कालिख और कड़े शारीरिक श्रम का दायरा ही आपकी नियति बन गया। अगर आपकी कोई सिफ़ारिश नहीं है या किसी बड़े साहब के आप रिश्तेदार नहीं हैं तो आपका कुछ नहीं हो सकता। मैं वहाँ व्याप्त नाइंसाफ़ियों और अनियमितताओं से जूझने के लिए यूनियन का चुनाव लड़ने लगा और एक बड़े जन-समर्थन की तरफ़ बढ़ने लगा।

वहाँ का एक पुराना दबंग यूनियन नेता मुझे अपने अस्तित्व पर ख़तरा समझने लगा और खुद को सुरक्षित रखने के लिए मेरा वहाँ से एक ऑफ़िस में तबादला करवा दिया। मेरे लिए तो यह तबादला एक लॉटरी साबित हुआ, लेकिन मुझे समर्थन देने वाले साथियों-सहकर्मियों पर यह बहुत नागवार गुज़रा। उन्होंने यही समझा कि यूनियन से अलग होने के लिए मुझे कीमत दी जा रही है, यानी मै बिक गया हूँ।

ख़ैर जो भी हो, एक चमत्कार की तरह पसीने, कालिख और शोर-शराबे से निकलकर मैं इत्मीनान एवं चमक-दमक से परिपूर्ण एक वातानुकूलित चौहद्दी में पहुँच गया। लोहे छिलने, काटने और तराशने वाले हाथ को अब कलम पकड़ने की ऑफ़िशियल मान्यता मिल गई थी। यहाँ मुझे प्रेस विज्ञप्ति आदि बनाने का काम सौंपा गया। मतलब मुझे अब तनख़्वाह कलम की बदौलत मिलने जा रही थी। गाँव से शहर आने के बाद मैंने प्राइवेट से एम. ए. तक पढ़ाई पूरी कर ली थी, जो आज नई जगह पर काम आ गई थी।

ऑफ़िस की चकाचौंध ने मेरी आँखें चुंधिया दी थी। यह एक तरह से सलमा-सितारों की एक आलीशान दुनिया थी, जहाँ सुख, वैभव और ठाट की सरिता में सारा कुछ सुंदर ही सुंदर और मादक ही मादक था। एकबारगी मुझे ऐसा लगा कि यहाँ किसी भी असहमति, द्वंद्व या शिकायत की कोई गुँजाइश नहीं रह गई। मगर इस मुग्धावस्था और यूटोपिया में थोड़े ही दिन बीते होंगे कि सलमा-सितारों वाली इस दुनिया की आंतरिक बदसूरती नग्न होकर मुझे दिखाई पड़ने लगी। मेरा मन दहल उठा। मैं समझ सकता

था कि पसीने और कालिख वाले लोग कठोर श्रम द्वारा उत्पादन में ईमानदार भागीदारी शामिल करके अंदर से पूरी तरह श्वेत और स्वच्छ थे, जबकि यहाँ के गैरउत्पादक लोग कंपनी का भला करने के नाम पर ज़्यादातर उसे नुकसान पहुँचाते हुए अंदर से काले और गंदे थे। हम बहुत छोटे पद के लोग भी स्पष्ट देख रहे थे कि यहाँ एक भयानक लूट, अराजकता, व्यभिचार और निकम्मापन फैला है। महिला कर्मचारियों के उपयोग एवं प्रोन्नति के मामले में भी यहाँ एक विचित्र तरह की दुराचारसंहिता लागू थी।

मैं वहाँ मज़दूर होकर लोहा छिलने के दौरान मैनेजमेंट को नीचे से देख रहा था और इस हाई प्रोफ़ाइल तथा ग्लैमरस विभाग में आकर मैनेजमेंट को ऊपर से देखने लगा था। मैं हैरान था - नैतिकता, उसूल और सेवा के मेकअप लिए हुए प्रबंधन के चेहरे बहुत सारे धब्बे, दाग और गड्ढों से भरे हुए थे।

मेरे साथ पता नहीं ऐसा क्यों है कि परिस्थियाँ लंबे अंतराल तक अनुकूल कभी नहीं रहीं। प्रतिकूलताओं में ही ज़्यादातर बसर करना मेरा नसीब रहा। बाहर तो मुझे कई तल्खियों से गुज़रना पड़ा ही, घर ने भी मुझे नहीं बख़्शा। प्रारब्ध के इस गणित का क्या कहा जाए कि जब आप बेहद ग़रीबी में थे तो ख़ैर फाँकाकशी करनी ही पड़ती थी...आज जब आपके पास अपना घर है और घर में सब कुछ है, फिर भी जब आप बाहर से लौटें तो घर की बत्तियाँ बुझी हों...दरवाज़े अनसुना करके बंद रहें और रसोई के चूल्हे ठंढे हों।

आज मैं कह सकता हूँ कि ये सारे तरद्दुद, जो मेरे साथ घटित हुए और जिन्हें मैंने सहे, तो इससे ऐसा नहीं है कि मैंने कोई असाधारण आचरण जीकर बहुत सहनशीलता का परिचय प्रस्तुत कर दिया, बल्कि सच यह है कि जोख़िम उठाने के प्रति मुझमें साहस का बराबर अभाव रहा कि जो मिला हुआ है कहीं वह भी छिन न जाए। गाँव वाली तकलीफ़ें अब भी मुझे याद आकर डरा जाती थीं। यह डर ही था कि मैं अपनी पेशागत और पारिवारिक यथास्थिति को बदल न सका।

बुरा हो मेरे आसपास की आवोहवा और तहजीब-तरक़ीब का कि स्त्री की चारित्रिक रहस्यमयता और उसकी बौद्धिक हदों ने मुझे एक भी मौके नहीं दिए कि स्त्री के बारे में मैं एक अच्छी धारणा बना सकूँ। पत्नी ही नहीं, माँ, बहन, चाची, मौसी आदि रिश्तों की भी कोई अच्छी नसीहतें मैं हासिल नहीं कर सका। प्रेम की तलाश ने मुझे बहुत भटकाया...बहुत थकाया। स्त्री की वह सनातन छवि कि वह अपने हरेक रूप में दयामयी, ममतामयी, स्नेहमयी, तरल, उदार और शुभेच्छू होती है, मैं ढूंढता रहा हर मोड़ पर, हर गली में। मैं अपनी माँ का इकलौता बेटा...माँ मुझे ज़रूर ही बहुत प्यार करती रही होगी...लेकिन मैं अपनी स्मृति में उसके वात्सल्य का कोई एक भी सघन पल ढूंढ नहीं पाता। माँ के रूप में जो तस्वीर उभरती है मेरे अंदर...उसमें उसका हमेशा बीमार रहना...बिस्तर पर पड़ा रहना...देह जतवाने का अहर्निश अनुरोध करना...दवा की शीशियों में उलझी रहना और बाउजी से हरदम पैसों के लिए खिच-खिच करना आदि ही शामिल है। मेरे ठिठके-ठिठुरे शैशव को प्यार-दुलार की थोड़ी मेंह मिल सकी तो उसे बाउजी ने ही दिया।

स्त्री के रूप में एक और सहोदर रिश्ता दीदी का उपस्थित था। मुझे क्लेश होता है यह लिखते हुए कि दीदी के साथ भी कोई घनिष्ठ और सुखद लम्हा मेरी स्मृति में कायम नहीं है। याद पड़ता है कि ज़्यादातर हम एक-दूसरे को मारते-पीटते ही रहते थे। दीदी ने एकबार मुझे ऐसा दौड़ाया था कि मैं संयुक्त परिवारवाले एक वीरान आँगन के

अनुपयोगी कुएँ में गिर गया था। दीदी ने किसी को इसकी ख़बर तक नहीं की, शायद डर से। लेकिन मेरा बचना बदा था। कुछ डूबने-उपराने के बाद मैं एक लोहे की कुंडी को पकड़ लेने में कामयाब हो गया। जोर से हाँक लगाई तो दादी ने आकर मुझे बाहर निकाला।

घर में चाचियों को या आस-पड़ोस की जनानियों को देखता था तो वे अक्सर किसी न किसी से गाली-गलौज, उकटा-पुरान, थूकम-फजीहत और चुगली-शिकायत में मसरूफ़ दिखती थीं। नारीगत करुणा और कोमलता की छाया उनमें कहीं से भी लेश मात्र प्रतिबिंबित नहीं थी।

गाँव में रागात्मकता या प्रेम का एक नन्हा ठौर मुझे मिला था, मगर उसकी मियाद बहुत छोटी थी। अस्मां आठवीं में पढ़ती थी और मैं मैट्रिक पास कर चुका था। उसके मामा ने मुझमें ट्यूशन पढ़ाने की काबिलयत देख ली। वे बड़े लोग थे। मुझे पता भी नहीं चला कि ज़रा-सी आत्मीयता के लिए खानाबदोश-से भटकते मेरे हृदय को कब अस्मां ने अपने हृदय में एक खास जगह दे दी। उसने मेरे लिए अपने हाथों से एक कमीज़ सिली थी। मैं हैरत में था कि घर की भीड़-भाड़ में रहकर उसने कैसे इतना एकांत ढूंढ लिया! दोस्ती कायम होने के बाद जब पहली ईद आयी तो वह बुखार में थी और नमाज़ पढ़ना उसके लिए मुमकिन नहीं था। उसने फिर भी नमाज़ नहीं छोड़ी। मेरे बहुत पूछने पर उसने बताया कि इस बार उसे एक बड़ी और ख़ास मुराद के लिए दुआ माँगनी थी और वह मुराद यह थी कि खुदा मुझे यानी कुबेर प्रसाद को ग़रीबी और गुरबत से निकालकर एक अच्छी जिंदगी बख्शे।

शायद सच्चे दिल से निकली हुई अस्मां की वह दुआ ही थी जो मुझे फल गई और मैं गाँव से शहर आ गया। जब उससे आखिरी विदाई ले रहा था तो वह मुस्कराने की कोशिश कर रही थी, मगर उसकी आंखों से जार-जार आंसू बह रहे थे। जुदाई की यह पहली चुभन थी जिसे मैंने जिगर में महसूस किया था। अपनी रुलाई भी मुझसे थम न सकी थी। जानता था कि अस्मां से यह मेरी आखिरी मुलाकात है। आगे गाँव आकर भी उससे मिलना संभव नहीं हो सकता था। चूँकि पर्दे में रहने के रिवाज़ की वह पाबंद थी जिसे बेधने का मेरे पास कोई बहाना नहीं हो सकता था।

इसके बाद लंबे समय तक एक रिक्तता, उचाटपन और नीरसता बनी रही। मेरी बीमार मां ने अपनी सुश्रुषा कराने की चाहत से, अपने मायकेवालों के बहकावे-फुसलावे में आकर, बहुत कम ही उम्र में एक ऐसी जगह मेरे कुंवारेपन को हलाल कर दिया जिसकी शिष्टाचार, शिक्षा और संस्कृति से पुश्तैनी दुश्मनी थी। शुरू से ही संशय, अविश्वास और मूर्खता के अटपटे और अनाड़ी तीर चल-चलकर मुझे बींधने लगे और दाम्पत्य एक गलीज अदावत बन गया और घर एक बदबूदार मछली बाजार। आज सोचकर बड़ा ताज्जुब होता है कि अदावत और मछली बाजार सदृश दोजख में भी एक-एक कर चार बच्चे हो गये। इसे ही कहते हैं बिना किसी पसंद-नापसंद के कहीं भी एषणा को बुझा लेने का पागलपन। बहरहाल, ये बच्चे खटारा दांपत्य को भी चलाते रहने की एक अनिवार्य शर्त बनते गए। आज भी हम उसी दांपत्य के जर्जर धागे से बंधे हैं तो इसका श्रेय इन बच्चों को ही जाता है।

मैं यह मान चुका था कि प्रेम और मैत्री का अवसर बार-बार नहीं मिलता। मुझे एकबार मिल चुका जिसे मैंने यों ही गँवा दिया। मगर शायद बर्बादियों के कुछ और मंज़र दिखाने के लिए भूकंप के कुछ और झटके अभी बाकी थे। मन में तो कहीं एक खालीपन था ही...एक चाह थी ही कि किसी से खूब अंतरंगता होती, एक दूसरे के दुख-सुख में साझीदार होते, एक-दूसरे के हम राज़दार होते...एक-दूसरे पर हम पूरी तरह निछावर होते। मेरी यह चिरसंचित आकांक्षा थी कि सृष्टि के तमाम मर्दजात जिस औरतजात के

लिए मरते, मिटते और पागल होते रहे हैं, उस औरत सदृश बहुआयामी और बहुअर्थी महाकाव्य को मैं एकदम पास से पूर्णता में पढ़ सकूं, समझ सकूं, महसूस कर सकूं...उसकी कोमलता, उसका सौंदर्य, उसकी अदायें, उसकी भंगिमायें, उसका मातृत्व, उसका त्रियाहठ, उसका सम्मोहन, उसमें बसा प्रेमतत्त्व...। मैं औरत के बारे में अपनी राय ईमानदारी से बदलना चाहता था।

अफसोस, मैं कामयाब न हो सका। शायद मुझमें ही कोई खोट रही हो। अपने पति से संबंध विच्छेद कर लेने वाली एक बोल्ड सी विदुषी महिला से मेरी नजदीकी बढ़ गयी। लगा कि तलाश पूरी हो गयी। मैं इस खुशफहमी में एक साल ही रहा हूंगा कि अचानक उसकी तरफ से उत्साह मंद पड़ने लगा और उसकी रुचि भटकने लगी। हैरान रह गया जानकर कि प्रेम की उसकी परिभाषा में निर्वाह के समय की परिधि उतना ही तय है, जितना में ऊब महसूस न हो। उसके अनुसार प्रेम के नाम पर तमाम उम्र का समर्पण एक बोरियत भरी बेवकूफी है।

मैंने देखा कि उसमें अनेक गाँठें हैं, एक खोलो तो दूसरे में उलझ जाओ...अनेक चौराहे हैं, एक रास्ते जाओ तो पता चले कि गंतव्य दूसरे रास्ते में शिफ्ट हो गया...अनेक मुखौटे हैं, एक से परिचय बढ़ाओ तो दूसरा मुखौटा अपरिचय लेकर हाज़िर। स्थिति मेरी आज भी यही है कि मैं अब भी गाँठों में उलझा हूँ, चौराहे पर उजबक बना गंतव्य तलाश रहा हूँ और मुखौटों के भीतर झाँककर उसकी असलियत चिन्हने की कोशिश कर रहा हूँ। मुझे पता है कि मैं अपने मकसद में कभी कामयाब नहीं हो पाऊँगा, फिर भी मृगतृष्णा कम नहीं होती। मैं रेगिस्तान में दौड़ रहा हूँ और दौड़ता चला जा रहा हूँ...।

(१६ मार्च २००७ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

पेटू

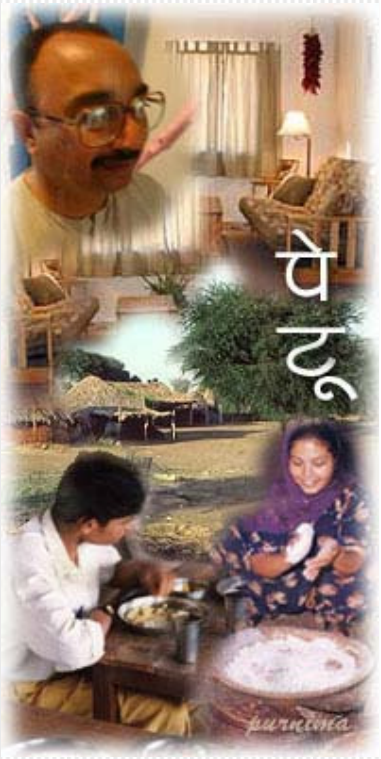

दरबारी प्रसाद अपने बचपन की भूख को आज तक नहीं भूले, वे शायद इसे भूलना भी नहीं चाहते। भूख की याद आती है तो अन्न के एक-एक दाने का मोल वे महसूस करने लगते हैं और जब अन्न के दाने उन्हें बर्बाद या फेंके हुए दिखाई पड़ जाते हैं तो बरबस उन्हें भूख याद आ जाती है।

कल रात में उनके बेटों ने दोस्तों को पार्टी दी। सुबह में दाई ने ढेर सारा खाना, पुलाव, चिकेन, सलाद, नान आदि घूरे पर फेंक दिये। उनकी नजर पड़ गयी और आत्मा रिस उठी किसी पके घाव की तरह। उन्होंने अनुमान लगाया कि ये सामग्री कम से कम बीस आदमी के भरपेट खाने लायक हैं।

इस तरह की बर्बादी उन्हें घर-बाहर अक्सर दिखाई पड़ जाती और वे बुरी तरह आहत हो जाते। क्लबों, होटलों, शादी की पार्टियों आदि में होनेवाली बाहर की बर्बादियों पर तो खैर उनका कोई अख्तियार नहीं हो सकता था, लेकिन वे बहुत निरीह और हताश थे कि घर की बर्बादी पर भी उनका कोई वश नहीं था।

उन्होंने कहीं पढ़ा था कि इस देश में एक दिन में अनाज की जितनी बर्बादी हो जाती है, उतने में इथोपिया, नामीबिया या सोमालिया जैसे भूखे देश के साल भर के भोजन की जरूरत पूरी हो सकती है।

माँ का चेहरा उन्हें अब भी बरबस याद आ जाता है। अन्न के कितने भी महीन दाने हों फ़टकते, सुखाते, पकाते या परोसते हुए उनके जमीन पर गिर जाने से वह एक-एक को मनोयोग से चुनने लग जाती थी, जैसे वे अन्न के नहीं मोती के दाने हों। बाद में भूख ने उन्हें भी समझा दिया था कि ये दाने सचमुच मोती से कहीं अधिक अनमोल हैं।

बेटे जवान हो गये थे, यों वे भी बूढ़े नहीं थे। बेटे मानते थे कि वे शहर में रहकर भी देहाती-गंवार ही रह गये। कदाचित यह सच था कि गाँव और भूख की सोहबत का इतना गाढ़ा रंग चढ़ गया था उनके दिमाग पर कि शहर और शहर के भरपेट भोजन का कोई प्रभाव वहाँ टिक ही नहीं पाया। वे सब कुछ सीखकर भी होशियारी और मक्कारी नहीं सीख सके। इसे ही उनके बेटे अक्लमंदी कहते और इसी अक्लमंदी के अभाव में उनकी बातों का घर में कोई तवज्जो नहीं। बेटे अपनी मरजी के मालिक थे और कुछ भी करने के लिए आजाद। इस आजादी में उनकी जो हरकतें होतीं, उन्हें देखकर वे हैरान रह जाते लगता ही नहीं कि ये बच्चे उनके घर, गाँव, जनपद और मुल्क के हैं। लगता कि इनकी रहन-सहन, चाल-चलन, खान-पान सब कुछ एकदम अनचिन्हा, अनपहचाना है। पता नहीं किस दुनिया-जहान की ये नकल कर रहे थे लगभग रोज उत्सव, पार्टी, नाच, गाना, धूम, धड़ाका। उनके लिए पैसों का यही बेहतर सदुपयोग था। दरबारी प्रसाद जैसे एक ही घर में रहकर भी एक अलग टापू बन गये। पैसों के

सदुपयोग की परिभाषा यहाँ एकदम अलग थीं। चूँकि जिंदगी के ककहरे ने उन्हें एकदम दीगर तरीके से सबक सिखाया था। वे चाहते थे कि पैसों को सबसे पहले दुनिया की भूख और बीमारी मिटाने में खर्च होना चाहिए। चाहे वे पैसे किसी के द्वारा भी अर्जित किये गये हों। यह पूरी दुनिया अगर बहुत बड़ी लगती हो तो उसमें कम से कम अपने नजदीकी रिश्तेदारों को ही शामिल करें। अगर यह भी गले से न उतरे तो फिजूलखर्ची और बर्बादी के गुनाह से तो खुद को बचा लें!

पिछले छः महीने में गाँव से दीदी की छः चिट्ठी आ चुकी हैं, जो स्याही से नहीं आँसुओं से लिखी हुई हैं। दीदी की एक किडनी खराब हो गयी है, उसे ऑपरेशन करके बाहर निकलवाना है, नहीं तो दूसरी भी संक्रमित हो जायेगी। उसने किसी तरह दस हजार रूपये जुगाड़ किये हैं, पाँच हजार उसे और चाहिए। घर के सकल आय-व्यय का वित्तमंत्री उनका बड़ा बेटा दुक्खन प्रसाद और मुख्य सलाहकार छोटा बेटा भुक्खन प्रसाद हैं। (दोनों को ही ये नाम बिल्कुल नापसंद हैं और वे खुद को डीपी एवं बीपी कहलवाना पसंद करते हैं। जबकि दरबारी ने ये नाम इसलिए दिये थे कि दुख और भूख को वे अपनी नजरों के सामने हर पल याद रखें। मगर ये लड़के अपने नाम की व्यंजना से बिल्कुल उल्टा विचार रखते थे।)

दरबारी प्रसाद ने छठी बार उन्हें याद दिलाया, "बेटे, पैसे भेज दो। दीदी मेरी सगी है, उसके बहुत ऋण हैं मेरे ऊपर। ऋण न भी होते फिर भी भाई होने के नाते इतनी सी मदद तो फर्ज है हमारा।"

दुक्खन ने छठी बार उसी जवाब की आवृत्ति की जो पहली बार उसने दिया था, "आपने कह दिया, अब मुझ पर छोड़ दीजिए। मैं इंतजाम होते ही भेज दूँगा।"

इस 'इंतजाम' शब्द का रहस्य उन्हें एकदम समझ में नहीं आया। घर में पार्टियाँ चल रही थीं अजीब-अजीब तरह के बेमतलब सामान आ रहे थे, जिनके बिना न किसी की छाती में दम घुट रहा था, न किसी के गले में निवाला अटक रहा था। कालीनें बिना फटे ही पुराने पर्दे की जगह नये पर्दे बिना किसी खराबी के पुराने टीवी और ऑडियो सिस्टम का एक्चेंज माइक्रोवेव ओवन वैक्यूम क्लीनर टेलीफोन इंस्ट्रुमेंट के ठीक-ठाक रहते हुए भी कॉर्डलेस उपकरण घर में दो-दो बाइक के रहते हुए भी एक तीसरा बाइक साड़ियाँ, कपड़े और बेडशीट आदि के बेमतलब बदले जाने की तो खैर कोई गिनती नहीं।

दरबारी की आजिजी बढ़ती जा रही थी, लेकिन वे उन्हें बरजने की योग्यता नहीं रखते, यह एहसास उन्हें बहुत पहले करा दिया गया था। वे दोनों कमाऊ और उनसे कई गुणा बेहतर एवं सम्मानित पदों पर थे। लड़के मुँह से कुछ बोलते नहीं थे लेकिन उनके आवभाव से यह ध्वनि स्पष्ट फूटती प्रतीत होती थी कि कमाते हम हैं तो खर्च चाहे कैसे करें, आपको कष्ट नहीं होना चाहिए और आप बाप हैं तो क्या हुआ आज के जमाने में अक्लमंद (होशियार और मक्कार) होना इससे भी बड़ी बात है।

ठीक है, अपनी कमाई चाहे जैसे उड़ायें, दरबारी प्रसाद को इस पर कोई उज्र नहीं थी, उज्र तब होती जब ऐसी ही आजादी उन्हें नहीं दी जाती। वे अपनी कमाई के पैसे अपने अनुसार खर्च नहीं कर सकते, चूँकि बजट बनाने का हक सिर्फ वित्तमंत्री को था। दरबारी प्रसाद ने ठान लिया कि अब उन्हें एक सख्त विपक्ष की भूमिका में आ जाना होगा।

उन्होंने बहुत नाराज भंगिमा बनाकर पूछा दुक्खन से, "क्या मैं जान सकता हूँ कि दीदी को भेजने के लिए इंतजाम कितना आगे बढ़ा। क्या यह इंतजाम दीदी पर कुछ आफत टूट जाने के बाद पूरा होगा?"

"सॉरी बाउजी, मैं बताना भूल गया। फुआ को पैसे तो मैंने भेज दिये, कई दिन हो गये।"

उनके मन ने खट से कहा कि ऐसी बात भूलने की नहीं हो सकती। जरूर कोई भेद हैं, उन्होंने पूछा, "कितने रूपये भेजे?"

"एक हजार।"

"एक हजार? मगर मैंने तो कहा था कि उसे पाँच हजार की जरूरत हैं!"

"अब जरूरत की कोई सीमा तो होती नहीं हैं, बाउजी। माँगने में किसी को क्या जाता है, जितना मन किया माँग लिया। मगर देनेवाले को तो अपना हिसाब-किताब भी देखना पड़ता है। इससे ज्यादा देना संभव नहीं था।"

एकदम चेहरा बुझ गया दरबारी प्रसाद का। कराहते हुए कहा, "क्या मैं किसी बीमारी में घिर जाऊँ और उसमें दस-बीस हजार लगाने पड़ जायें तो यों हीं छोड़ दोगे मुझे मरने के लिए?"

"बाउजी, आप कहाँ की तुक कहाँ जोड़ने लग जाते हैं! कितनी बार कहा कि अपने खंडहर अतीत से निकलिये बाहर और अपने इमोशंस-सेंटीमेंट को नये संदर्भ से जोड़िये। फुआ कोई लावारिस नहीं हैं, उनके अपने परिवार हैं बेटे हैं दामाद हैं।"

दरबारी प्रसाद की आँखें आँसुओं से डबडबा गयीं लगा कि आज भी वे उतने ही बेबस हैं, उतने ही भूखे हैं जितने गाँव में थे। फर्क सिर्फ इतना था कि भूख की वेदना अब आँत में नहीं जिगर में थी। दीदी उनके लिए खून की रिश्तेवाली सिर्फ एक सामान्य बहन नहीं थी। बल्कि उनकी भूख और भोजन से उसकी कई मार्मिक यादें जुड़ी थीं। दीदी उसे भरपेट खिलाने के लिए हर समय उतावली रहती थी।बहुत सुंदर थी दीदी, इसलिए उसका ब्याह एक अच्छे खाते-पीते परिवार में हो गया था। बगल के ही होम-टाउन नवादा में उसका जेठ नौकरी करता था। उसके डेरे पर अक्सर गाँव से लोगों का आना-जाना लगा रहता। कोर्ट-कचहरी, शादी-गौने की खरीदारी और बीमारी की दवा-दारू के लिए। दीदी भी किसी की सुश्रुषा करने या खुद का इलाज करवाने यहाँ आती रहती। गाँव से नवादा जाना तब बहुत आसान था। गाँव के पास ही स्थित स्टेशन पर जाने के लिए दिन भर में दो बार रेलगाड़ी रूकती थी और आने के लिए तीन बार। इनमें सफर के लिए टिकट लेना कभी-कभी ही जरूरी होता था। दरबारी हाई स्कूल में पढ़ रहा था और घूमने-देखने के लिए दोस्तों के साथ बाजार जाने लगा था। बाउजी ने एक दिन कहा कि जब नवादा जाते हो तो जरा दीदी का भी समाचार ले लिया करो।

दरबारी चला गया एक दिन। दीदी यहीं थी। उसे देखकर एकदम खिल उठी। थाली में पानी लाकर उसके पैर धोये (इस अर्थतंत्र में भी भाई की निर्धनता और फटेहाली के गणित से दीदी को कोई मतलब नहीं था) फिर कहा, खाना लगाती हूँ जल्दी से खा लो। उसने नीचे बोरे का आसन बिछा दिया और पानी का जग एवं गिलास रख दिया। दरबारी नीचे बैठ गया। भोजन की थाली आयी तो उसे देखकर उसकी आँखें चमक उठीं। इतना बढ़िया खाना उसने कब खाया था, याद करने की कोशिश की, लेकिन याद नहीं आया। भर थाली भात, भर कटोरा झोलदार मछली, पापड़, अचार और सलाद। अपने घर में भी उसने भात खाये थे और मछली भी मगर ऐसा भात, खुशबूदार, रूई के फाहे की तरह मुलायम एवं लंबे-लंबे। उसने बड़ा सा कौर मुँह में डालते हुए पूछा, "यह कौन-सा भात और कौन-सी मछली है दीदी?"

दीदी उसके सामने ही बैठी थी, कहा, "इसे बासमती चावल कहते हैं और मछली का नाम रोहू हैं।"

दीदी ने आगे कहा कि उसके जेठ खाने-पीने के बहुत शौकीन हैं, हमेशा माँस-मछली और ऐसा ही उम्दा किस्म का महँगा चावल खाते हैं। दरबारी ने पहली बार यह जाना था कि आदमी-आदमी में फर्क की तरह चावल-चावल में इतना फर्क हो सकता है। उसने खूब छककर खाया और फिर दीदी को बहुत कृतज्ञ नेत्रों से निहारा।

दीदी उसे इस तरह बेसुध होकर खाते देख खुद भी एक आह्लाद से भरती रही। उसने माँ-बाउजी का समाचार पूछा। दुखी हुई जानकर कि वे पहले की तरह ही बीमार और दुर्बल हैं। आगे यह भी पूछा कि इस समय घर में खाने के लिए क्या है?

दरबारी ने बताया, "आठ दिन पहले तो कुछ नहीं हुआ था, अभी-अभी मड़ुआ कटा है तो रात-दिन मड़ुआ की रोटी चल रही है।"

दीदी को कोई ताज्जुब नहीं हुआ। वह जानती थी कि यही होता रहा है धान की फसल होने पर जब तक चावल खत्म न हो जाये रात दिन भात गेहूँ की फसल होने पर जब तक गेहूँ खत्म न हो जाये रात दिन गेहूँ की रोटी इसी तरह चना, मकई और खेसाड़ी आदि के साथ भी होता था। दीदी के चेहरे पर एक मायूसी उभर आयी। उसने दरबारी के माथे को सहलाते हुए कहा, "सबका दिन फिरता है मुन्ना देखना, तुम्हारा भी फिरेगा एक दिन। खूब मन लगाकर पढ़ो, जरूर तुम्हें कोई अच्छा काम मिल जायेगा।"

वह दीदी का मुँह देखता रह गया था, क्या सचमुच ऐसा होगा?

दीदी ने आगे बताया था, "मैं अभी चार-छह महीने यहीं रहूँगी। जेठानी को लड़का हुआ है। घर का सारा काम मेरे ही जिम्मे हैं खाना बनाने से लेकर उनका बदन मालिश तक। करना पड़ता है, तुम्हारे जीजा भी बेरोजगार हैं न और सबको मालूम है कि मैं बहुत गरीब घर से आयी हूँ!" दीदी के चेहरे पर एक थकान और बेबसी झाँक गयी थी। उसने फिर कहा, "तुम कम से कम हर इतवार को आ जाया करो। जेठ जी अभी खाना खाने आयेंगे, तुम उनसे बढ़िया से प्रणाम-पाति करके बोलना-बतियाना।"

जेठ आया तो मन न होते हुए भी उसने उसके पैर छूकर प्रणाम किये। दीदी ने जेठ को सुनाते हुए कहा, "आज यहीं रूक जाओ दरबारी, कल सुबह चले जाना।"

दरबारी ने जेठ के चेहरे देखे, कोई आपत्ति नहीं थी वहाँ। पैर छूने का शायद असर हुआ। रूक गया वह, लालच तो था ही कि दो-तीन शाम और अच्छा खाना मिल जायेगा।

किसी शहर में रात गुजारने का यह उसके लिए पहला मौका भी था। खासकर एक ऐसे क्वार्टर में जहाँ इकट्ठे सब कुछ उपलब्ध हों, टायलेट, बाथरूम, बिजली, पानी।

बहुत मजा आया उसे, मन ही मन उसने प्रार्थना की, ' हे भगवान! क्या हमें भी ऐसी जिंदगी नहीं मिल सकती है?"

क्वार्टर के पास ही इस शहर का इकलौता सिनेमा हॉल सरस्वती टॉकिज था। उसने अब तक सिनेमा नहीं देखा था, हाँ एक हसरत से इस हॉल को उसने कई बार बड़ी देर तक खड़े हो-होकर देखा था। खासकर शो के टाइम हो जाने पर टिकट के लिए मची एक अफरा-तफरी देखकर उसके मन में एक जोरदार कौतूहल हो उठता था कि जरूर यह सिनेमा एक ऐसी चीज है जो सबको सहज उपलब्ध नहीं हो सकता। वह हॉल के शीर्ष पर रखे लाउडस्पीकर के चोंगे से बजते नये-नये फिल्मी गानों को बड़े ध्यान से सुनता और संतोष कर लेता।

जब मैटिनी शो का टाइम होने लगा तो लाउडस्पीकर की आवाज क्वार्टर में ही आने लगी। खिड़की के पास बैठकर उसने कान इधर ही लगा दिये। आनंद की एक हिलोरें उठने लगीं उसके मन में। ठहरे हुए, ठिठके हुए गाँव की तुलना में शहर कितना चलायमान और गुंजायमान होता है न!

दीदी के जेठ जब शाम को ऑफिस से वापस आए तो साथ में कई तरह की सब्जियाँ और फल भी लेते आए। दीदी उनके आने के ठीक पहले किचेन में चली गयी जहाँ से क्षुधा-ग्रंथि को जाग्रत कर देने वाली खुशबुएँ आनी शुरू हो गयीं। थोड़ी ही देर में उसने एक गरमागरम प्लेट लाकर दिया जिसमें देखते ही खाने का आमंत्रण समाया था। प्लेट की एक सामग्री हलवा को वह पहचानता था, दूसरी का नाम दीदी ने पनीर पकौड़ा बताया। गजब का स्वाद था उसमें। इसे खाने के बाद चाय दी गयी। रात के खाने में घी से चुपड़ी हुई चपातियाँ और दो-तीन तरह की बेहद लज़ीज़ सब्जियाँ थीं। रात में लग ही नहीं रहा था कि कहीं से भी अँधेरा हैं। घर-बाहर हर जगह तेज रौशनी फैली थी और सारी चीजें दिन की तरह दिखाई पड़ रही थीं। गाँव के घरों में तो टिमटिमाते दीए की क्षीण और मरियल रौशनी के अलावा हर जगह अँधेरा ही अँधेरा बिछा होता हैं। उसे अच्छी नींद नहीं आयी बस सोचता ही रह गया कि इस एक दुनिया में कितनी अलग-अलग दुनिया हैं और इनमें रहनेवाले लोग कितने अलग-अलग हैं।

सुबह शौचालय जाने में उसने खूब फूर्ती महसूस की। गाँव में लोटा लेकर कम से कम एक मील तो पैदल जाना ही पड़ता था। अगर कहीं जोर लग गया तो सिवा किसी तरह रोक रखने का दूसरा कोई उपाय नहीं। उसने आज धोने में ढेर सारा पानी का इस्तेमाल किया। एक लोटे पानी से धोने में उसे हर बार लगता था कि यह बहुत कम हैं। ऐसा ही उसने नहाने में भी किया। ऊपर फव्वारा था, दरवाजा बंद करके उसने जोर से चला दिया। इस तरह बंद कमरे में अकेले नंगे होकर नहाने का यह उसका पहला अवसर था। हालांकि खुद से भी लाज लग रही थी उसे। उसने अच्छी तरह पूरी देह में दो बार साबुन लगाये। पता नहीं कितने दिनों बाद आज वह साबुन लगा रहा था।

कपड़े आदि उसने पहन लिये तो दीदी ने कहा, "नाश्ता ला रही हूँ, खा लो।"

उसने थाली और कटोरे में पूड़ी, सब्जी और खीर ला दी। दरबारी खाते हुए एक रोमाँच से गुजरता रहा कि यह कैसा सौभाग्य है कि रात-दिन में यहाँ चार-चार बार लोग खा रहे हैं और चारों ही बार अलग-अलग तरह की चीजें! जबकि उसे एक ही तरह का रूखा-सूखा दो बार भी नियमित नहीं मिला करता। उसने सुना भर था कि अलग-अलग समय के खाने का अलग-अलग नाम होता है - ब्रेक फास्ट, लंच, स्नैक्स, डिनर आज उसने चरितार्थ होते देख लिया।

नाश्ता करके उसने स्टेशन के लिए निकल जाना चाहा, लेकिन दीदी ने कहा, "खाना खाकर बारह बजेवाली पैसेंजर से चले जाना। जेठ जी माँस लाने गये हैं।"

माँस के नाम से उसके खाने की तलब में एक अधैर्य समा गया और मुँह में ढेर सारी लार भर आयी। अपने घर में माँस खाये उसे न जाने कितने महीने हो गये। रूक गया वह और जी भरकर माँस-भात खाया।

दीदी ने चलते हुए उसकी मुट्ठी में पाँच रूपये पकड़ा दिये और कहा, "इतवार को आ जाया करना दरबारी।"

दीदी की वह स्नेहमयी और रागात्मक संभाषण-मुद्रा दरबारी के हृदय-पटल पर अंकित हो गयी।

अब वह प्राय: हर इतवार को वहाँ धमक जाने लगा। कभी रात में ठहर जाता, कभी खा-पीकर उसी दिन वापस हो जाता। दीदी बहुत खुश होती। इसी तरह आते-आते एक दिन उसने लक्ष्य किया कि दीदी का जेठ उसे कड़ी नजरों से घूरने लगा है और उसकी मुखाकृति पर एक रोष दिखाई पड़ने लगा है।

एक दिन दीदी ने उसे कुछ सामान से भरा एक थैला दिया और कहा, "इसे लेते जा मुन्ना, घर में काम आएगा।"

उस थैले में प्रचुर मात्रा में साबुन, तेल, बिस्कुट, चनाचूर आदि रखे थे। दीदी ने शायद अपने हिस्से की ये चीजें किफायत करके बचा ली थीं। जब इन्हें माँ ने देखा तो उसे डाँटने लगी, "यह अच्छा नहीं किया तुमने। बहन के यहाँ से भी कहीं कोई कुछ लेता है? तुम्हारी आदत बिगड़ती जा रही है। जरा सुधारो इसे।"

दरबारी हैरान रह गया - उसने तो सोचा था कि इन्हें लेकर माँ बहुत खुश होगी, पर पता नहीं किस धातु की बनी थी वह! आगे उसने देखा कि घर में साबुन-सर्फ के रहते हुए भी माँ-बाउजी दोनों सोड्डे या रेह से कपड़े धोते रहे और सिर में काली मिट्टी लगाकर नहाते रहें। दरबारी अकेले बहुत दिनों तक इनका इस्तेमाल करता रहा। साबुन से वह कुएँ पर नहाता तो लोग ताज्जुब से इस तरह देखते जैसे वह चोरी करके लाया हो।

यों चोरी करना भी दरबारी के लिए अब कोई वर्जित काम नहीं था। कई दिन तक जब भूख से आँतें ऐंठने लगतीं, चूँकि महाजनों से डयोढ़िया-सवाई पर कर्ज लेने की सीमा भी पार हो गयी रहती और आगे कोई उपाय नहीं दिखता, तो वह रात में बड़े जोतदारों के खेत से भुट्टे, चना, आलू, शकरकंद, चीनियाबादाम आदि उखाड़ लाता। माँ-बाउजी उसकी यह हरकत देखकर माथा पीट लेते। वे भूखे रह जाते पर इन चीजों को हाथ तक नहीं लगाते। दरबारी अफसोस करता अपने आप पर, खुद को कोसता और बरजता

भी, मगर भूख उसे माँ-बाउजी की तरह ज्यादा बर्दाश्त नहीं होती थी। उसे लगने लगा था उन दिनों कि अगर यही स्थिति रही तो वह एक दिन कोई बड़ा डाकू नहीं तो एक शातिर चोर तो जरूर ही बन जायेगा। यों वह समझ सकता था कि भुखमरी और लाचारी न होती तो शायद वह कभी गलत काम की तरफ रूख नहीं करता।

जब से वह दीदी के यहाँ जाने लगा था, इस बुरी लत पर एक काबू बनने लगा था। चोरी-छिछोरी से बेहतर समझता था कि नवादा हो आया जाये। एक-दो शाम डटकर खा लेने के बाद चार-पाँच दिन तो जैसे-तैसे निकल ही जाते थे। मगर उसके जेठ की चढ़ी त्योरी से अब यह भी आसान नहीं रह गया।

इस बार दरबारी चला तो रास्ते में असमंजस के अलावा भी कई अन्य अवरोध बिछे थे। ट्रेन काफी लेट आयी और दीदी के घर पहुँचते-पहुँचते गर्मी की प्रचंड धूप जैसे ज्वाला बन गयी।

इतवार होने की वजह से दीदी को उसके आने का शायद पूर्वाभास था। खिड़की से वह रास्ते को निहार रही थी। उस पर नजर पड़ते ही वह घर से निकलकर कुछ आगे बढ़ आयी और उसे वहीं रोक लिया। एक दरख्त की छांव में ले गयी और कहा, "मैं तुम्हारी ही राह देख रही थी मुन्ना। तुम्हारे बार-बार आने को लेकर जेठ बहुत उल्टा-टेढ़ा बोल रहा था, इस बात को लेकर मुझसे कहा-सुनी भी हो गयी। तुम आज घर मत जाओ, तुमसे भी उसने कुछ कह दिया तो मुझसे सहा नहीं जायेगा।"

पल भर के लिए दरबारी को लगा कि दीदी ने पिछली बार जो सामान दिये थे उसे, कहीं घोंचू को इसकी जानकारी तो नहीं हो गयी? दीदी की बेचारगी को कुछ पल पढ़ता रहा दरबारी, फिर कहा, "ठीक हैं दीदी, मैं लौट जाता हूँ यहीं से कोई बात नहीं। लेकिन तुम मेरे कारण अपने जेठ से संबँध को कड़वा न करों। इन्हीं लोगों के साथ तुम्हें रहना हैं, जीजा अक्लमंद और तेज होते तो बात दूसरी थी। तुम जाओ, मैं जरा सामनेवाले घर से माँगकर एक लोटा पानी पी लूँ।"

"दीदी ने कहा, "यहाँ से क्यों माँगोगे, मैं अपने घर से पानी ले आती हूँ। अभी कोई देखेगा नहीं, सभी सोये हैं।"

दीदी ने झट पानी में चीनी घोलकर ला दिया। इसे दरख्त के नीचे खड़े-खड़े ही उसने गटागट पी लिया और पैर को ठंडा करने के लिए उस पर पानी डालने लगा। दीदी ने देखा - तवे की तरह तपती जमीन पर दरबारी नंगे पाँव चलकर आया था और उसके तलवे में फफोले उठ आए थे। भूख क्या-क्या करवा देती हैं। बेचारे को फिर इसी तरह इन्हीं जले पैरों से अंगारों पर चलकर वापस होना होगा।

दीदी कराह उठी जैसे तलवों के सारे छाले (फफोले) दीदी के हृदय पर स्थानांतरित हो गये। भरे गले से उसने कहा, "मुन्ना, मुझे माफ कर देना कि मैं तुम्हें रास्ते से ही वापस कर रही हूँ। इस गरमी में झुलसकर आए तुम और मैं तुम्हें एक पहर आराम करने की भी जगह नहीं दे पा रही। कितना जुल्म कर रही हूँ मैं तुम पर मैं मर भी जाऊँ तो तुम मुझे देखने मत आना।"

दरबारी ने देखा कि दीदी के चेहरे पर, उस वक्त की तुलना में, जब उसने कहा था 'हर इतवार को आया करो मुन्ना', इस वक्त यह कहते हुए कि 'अब मत आना मुन्ना', कहीं ज्यादा सान्निध्य और घनिष्ठता के भाव छलक आए हैं।

दरबारी ने पूरे आदर के साथ कहा, "अच्छा दीदी, अब मैं नहीं आऊँगा, लेकिन तुम भगवान के लिए मरने की बात मत करो।"

दीदी की आँखों से टप-टप आँसू चूने लगे। एक अपराध-बोध से दरबारी का हृदय हाहाकार कर उठा, "तुम रो रही हो दीदी? मैंने तुम्हें रूलाया, कसूरवार हूँ मैं मत रोओ दीदी। सचमुच तुम्हारा यह भाई कितना पेटू हो गया था कि तुम्हारी इज्जत की बिना परवाह किये खाने चला आया करता था। तुम्हारे जेठ की आपत्ति वाजिब है, दीदी।"

दीदी ने उसके माथे पर हाथ फिराते हुए कहा, "मैं कितना लाचार हूँ मुन्ना कि अपने घर में तुम्हें खाने तक की छूट नहीं दे सकती। सच मेरे भाई, विधाता अगर मुझे सामर्थ्यवान और आत्मनिर्भर बना दे तो मैं पूरी जिंदगी तुझे खिलाते हुए और खाते देखते हुए गुजार दूँ। सच दरबारी, तूँ खाते हुए मुझे बहुत अच्छा लगता है रे जब तुम खाते हो तो लगता है जैसे अन्न पूजित और प्रतिष्ठित हो रहे हों।"

दरबारी दीदी के पाँव छूकर अपने फफोलेदार तलवों से चलकर वापस हो गया। दीदी ने उसकी जेब में दस रूपये डाल दिये और कहा, "किसी दुकान में कुछ खा लेना और सुनो दरबारी, इस भूख को अगर पछाड़ना है तो पढ़ाई में कोई कोताही न करना।"

इसके बाद दरबारी सिर्फ खाने की लालसा लेकर दीदी के पास कभी नहीं गया। जब लगभग एक साल गुजर गया तब वह मिलने आया मगर एक खास मकसद लेकर। आते ही उसने स्पष्ट कर दिया, "दीदी मैं खाने नहीं आया। तुमसे मिलने आया हूँ और तुरंत ही चला जाऊँगा। तुमने कहा था पढ़ाई ठीक से करना, तो मैं दिखाने आया हूँ कि मैं पढ़ाई ठीक से कर रहा हूँ और मैं मैट्रिक पास कर गया हूँ देखो, यह मार्कशीट है।"

दीदी उसे तनिक विस्मय से, तनिक हर्ष से और तनिक गर्व से अपलक निहारती रह गयी। दरबारी झट मुड़ गया, "अच्छा दीदी, चलता हूँ।"

"दरबारी!" राग दरबारी जैसे सुर में दीदी ने दरबारी को पुकारा। लपककर उसके हाथ से मार्कशीट ले ली। एक नजर कुलयोग पर डाला। फिर उसके भोलेपन पर रीझती हुई उसे गले से लगा लिया और कहा, "तूने आज इतनी बड़ी खुशखबरी सुनायी है और मैं तुम्हें यों ही बिना मुँह मीठा कराये ही चली जाने दंू? इतना बड़ा अपराध करायेगा तू अपनी दीदी से!"

"तो ऐसा कर दीदी, जल्दी से मुझे तू एक चम्मच चीनी खिला दे, कहीं तेरे जेठ ने मुझे देख लिया।"

"देखने दे, आज में किसी से नहीं डरूँगी आज तू विजेता बनकर आया है। हाँ दरबारी, भूख पर तूने एक चौथाई जीत हासिल कर ली हैं।"

दीदी उसे बिठाकर घर में जो कुछ भी अच्छा उपलब्ध था, खिलाने-पिलाने लगी। दरबारी ने तय किया था कि घोंचू के इस क्वार्टर में वह कभी फिर से खाने की गलती नहीं करेगा। मगर दीदी के स्नेह के आगे भला दरबारी का कुछ भी तय किया हुआ कहाँ टिक सकता था! उसने सब बिसरा दिया आखिर भूख भी तो उसे लगी ही थी।

वह खा ही रहा था कि दीदी का जेठ प्रकट हो गया। उसके साथ दरबारी का ही हमउम्र एक लड़का था - जेठ का सबसे छोटा भाई। पहले तो दरबारी सहम गया। लगा कि कौर उसके गले में ही अब अटककर रह जायेगा। मगर उसकी आँखों में आज गुर्राहट नहीं थी। अच्छे मूड में वह दिख रहा था। आराम से बैठते हुए उसने दरबारी को संबोधित किया, "पहचानते हो इसे यह मेरा छोटा भाई है मैट्रिक की परीक्षा दी थी इसने सेकेण्ड डिविजन से पास कर गया। एक तुम हो, एक नंबर के पेटू स्साले सिर्फ खाने के चक्कर में रहते हो आवारगर्दी करते हो। पढ़ाई-लिखाई तो नहीं करते होगे। करते भी तो क्या फायदा बिना पढ़े तो पास करते नहीं। मेरे इस भाई को देखो और जरा शर्म करो।"

दरबारी ने जल्दी-जल्दी बचे हुए को खाकर खत्म कर दिया। हाथ धोकर बहुत देर तक यों ही बैठा रहा। मन में यह विचार करता रहा कि इस आदमी को अपनी मार्कशीट दिखाये या इसे यों ही एक भुलावे में पड़े रहने दे। दीदी ने जेठ के भाषण अंदर से ही सुन लिये थे। दरबारी को जब इसका कोई जवाब देते नहीं सुना तो द्वार पर आकर आवाज लगायी, "मुन्ना, भैया को जरा अपना अंकपत्र दिखा दो।"

दरबारी ने जेब से निकालकर अंकपत्र दिखा दिया। जेठ की आँखें ताज्जुब से फटी की फटी रह गयीं। दरबारी ने सेकेण्ड नहीं फर्स्ट डिविजन से पास किया था सिर्फ फर्स्ट डिविजन नहीं बल्कि हाई फर्स्ट डिविजन।

उसे अपार खुशी हुई पहली बार वह दरबारी को देखकर इतना खुश हुआ था। कहा, "अरे तूने तो कमाल कर दिया, मैं तो तुम्हें एक नंबर का नकारा और पेटू समझता था मगर तुम तो बहुत तेज निकले!" उसने अपनी जेब से बीस रूपये निकाले और अपने भाई को देते हुए कहा, "जाओ, सरस्वती टॉकिज में दरबारी के साथ सिनेमा देखना और फिर मिठाई खा लेना।"

पहले तो दरबारी को लगा कि उसे गरीब जानकर कोसने-धिक्कारने और अंडरइस्टीमेट करनेवाले इस अहमक आदमी के ऑफर को वह ठुकरा दे, मगर सिनेमा देखने की उसकी एक चिरसंचित आकांक्षा अब तक अधूरी थी अत: वह इंकार नहीं कर सका। उसने सोचा कि इसे अच्छी पढ़ाई का एक पुरस्कार के रूप में लिया जाये। उसके छोटे भाई के साथ चला गया वह। हॉल में बैठकर सिनेमा देखने की उसकी साध पूरी हो गयी।

आगे की स्थितियाँ बहुत तेजी से उलट-पलट हो गयी थीं। जीजा की निष्क्रियता और निखट्टूपन के कारण घोंचू ने बदनीयती से जमीन के चंद टुकड़े देकर दीदी को अलग कर दिया जिससे उसकी हालत डगमग और बदतर होती चली गयी। दरबारी ने अभावों और मुश्किलों में भी अपनी पढ़ाई जारी रखी और उसे एक स्टील कंपनी में नौकरी मिल गयी। दीदी ने अभाव के बावजूद कभी हाथ नहीं पसारे मेहनत-मजूरी करके गुजारा चलाती रही। ये और बात है कि दरबारी खुद से किसी न किसी बहाने, जब तक उसका चला, अपनी मदद उपलब्ध कराता रहा।

आज शायद जीवन को दाँव पर लगा देख पूरे जीवन में पहली बार दीदी ने मुँह खोलकर उससे पाँच हजार रूपये माँगे थे। कुछ भी नहीं थी यह रकम दरबारी अपनी पूरी कमाई भी दीदी के लिए न्याछावर कर देता फिर भी बुरे दिन की उसकी जालिम भूख पर जो रहमोकरम उसने किये हैं, उसकी भरपाई नहीं हो सकती। हैरत है कि दरबारी के बेटे ऐसी ममतामयी दीदी को बचाने के लिए मामूली से पाँच हजार भी देने के तैयार नहीं हैं।

वे एकदम खिन्न और उद्विग्न हो गये। तनिक तैश में आकर जवाबतलब कर लिया, "कालीन, पर्दे, टीवी, बाइक आदि के लिए पैसे हैं तुम लोगों के पास, लेकिन मेरी अपनी उस बहन की जान बचाने के लिए एक तुच्छ सी पाँच हजार की रकम नहीं दे सकते, जिसने मेरे सुखाड़ के दिनों में मुझपर अगाध प्यार बरसा कर मुझे हरा बनाये रखा। उस जमाने में पाँच-दस करके ही जितने रूपये मुझे दिये हैं उसने, उसका सूद हम जोड़ना भी चाहें तो गणित फेल हो जायेगा।" कहते-कहते एकदम भावुक हो गये दरबारी प्रसाद।

भुक्खन को उनकी यह भावुकता जरा भी अच्छी नहीं लगी। वह चिड़चिड़ा उठा, "आप यों ही बकबक करते हैं मगर आप जानते भी हैं कि इन चीजों का इंतजाम हम कैसे करते हैं?बाउजी, आप यह मत समझिए कि बैंक में इफरात पैसा पड़ा है जिससे हम बेमतलब की चीजें खरीद रहे हैं। दरअसल जो सर्किल और स्टेटस हैं हमारे, उसे मेंटेन करने के लिए यह सब करना पड़ता हैं। सच यह है बाउजी कि हम बहुत तंगी से गुजर रहे हैं और स्टैंडर्ड को मेंटेन करने में हमारी आमदनी बहुत कम पड़ रही हैं।"

दरबारी ठगे रह गये - एक नया रहस्य खुल रहा था उनके सामने। एक तो रिटायर होने के बाद उनके पैसे भी घर बनाने और इसे सजाने-सँवारने में ही खर्च हो गये, ऊपर से दो-दो नौकरी के पैसे आ रहे हैं।

भुक्खन ने आगे कहा, "जिन चीजों के नाम आपने गिनाये हैं, आप जानना चाहते हैं न कि वे कैसे लाये गये? तो सुनिये, माइक्रोवेव ओवन हमने दुकान से छत्तीस किस्तों में लिये हैं टीवी और ऑडियो सिस्टम बहुत कम पैसे देकर एक्चेंज ऑफर में खरीदे गये हैं। चूँकि ये बहुत पुराने और आउट डेटेड हो गये थे। कालीन हमने क्रेडिट कार्ड से लिये हैं। बाइक भी दुक्खन भैया ने इम्प्लॉय टेम्परेरी एडवांस लेकर लिया है, चूँकि उनका पुराना बाइक बहुत पेट्रोल पी रहा था। नया बाइक जापानी टेक्नॉलॉजी से बना है और पेट्रोल के मामले में बहुत एकोनॉमी हैं। आज-कल में हमें कार भी खरीदनी हैं, चूँकि पास-पड़ोस में सबके पास कार हो गयी हैं। सब टोकते रहते हैं। बैंक से लोन लेना होगा इस तरह घर की एक सैलेरी लगभग किस्त चुकाने में ही खप जाती हैं। अब आप खुद ही निर्णय कर लीजिये कि हमारी हालत क्या है। आप चिन्तामुक्त रहें इसीलिये घर के अफेयर्स से हम आपको अलग रखते रहे, जिसका आपने शायद गलत अर्थ निकाल लिया, लेकिन ऐसा नहीं है, बाउजी।"

दरबारी प्रसाद का माथा घूम गया बुरी तरह। उन्हें याद आ गयी गाँव की महाजनी प्रथा। उन्हें लगा कि आज वही प्रथा दूसरे रूप में उनके सामने आ गयी हैं जिनके व्यूह में फँसकर दो अच्छी तनख्वाह के बाद भी उनका घर पूरी तरह कर्जदार हो गया है। उनके बाउजी भी गाँव के साहुकार या बड़े किसानों से अनाज ड्योढिया-सवाई पर लाते थे और अगली फसल में मूल नहीं तो सूद चुका देते थे। मगर तब कर्ज लेने का मकसद सिर्फ पेट भरना होता था। आज स्टैंडर्ड मेंटेन करने के लिए कर्ज लेना पड़ रहा है, कुछ इस तरह कि ऊपर से वह लगता ही नहीं कि कर्ज हैं। क्या पहले से भी शातिर और खतरनाक खेल नहीं बन गया है यह? बाजार ने अपने तिलिस्म इस तरह फैला रखे हैं कि आप में क्रय-शक्ति न भी हो तो भी वे लुभावने स्कीम जैसी कर्ज की एक अदृश्य फाँस में लेकर विलासिता के उपकरण खरीदने के लिए आपको आतुर बना देते हैं।

एक्सचेंज ऑफर, क्रेडित कार्ड, कंज्यूमर लोन, परचेजिंग बाई इन्स्टॉलमेंट ये सारे अलग-अलग नाम कर्ज में घसीटने के लिए बाजारवाद और उपभोक्तावाद का व्यूहपाश ही तो हैं जिनमें उनके बेटे फँस गये हैं बुरी तरह।

मतलब तय हो गया कि दीदी को यहाँ से किडनी निकलवाने के लिए और रूपये नहीं भेजे जा सकते।

एक महीने बाद खबर मिली कि दीदी मर गयी। दरबारी प्रसाद को लगा कि वे फिर अपने उन भूखे दिनों में लौट गये हैं और दीदी कह रही हैं, "विधाता अगर मुझे सामर्थ्यवान और आत्मनिर्भर बना दें तो मैं पूरी जिंदगी तुझे खिलाते हुए और खाते देखते हुए गुजार दूँ। सच दरबारी, तू खाते हुए मुझे बहुत अच्छा लगता है रे जब तुम खाते हो तो लगता है जैसे अन्न पूजित और प्रतिष्ठित हो रहे हों।"

बच्चे की तरह खूब बिलख-बिलखकर रोये दरबारी प्रसाद। मन में वे सोचते रहे कि दीदी की मौत का जिम्मेवार वे किसे ठहराएँ दीदी की गरीबी को, खुद को, अपने बेटों को या फिर बाजार के तिलिस्म को?

(९ नवंबर २००२ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

सिले हुए ओंठ

वेसेल में १६०० डिग्री सेंटीग्रेड तापक्रम पर पिघला हुआ (मोल्टेन) इस्पात था, जिसे प्लैटफॉर्म के नीचे स्टील ट्रांस्फर कार पर रखे लैडेल (बाल्टी) में टैपिंग (ढालना) किया जा रहा था। ठीक इसी वक्त ओवरहेड क्रेन के ऊपर से कोई वर्कर ज्वालामुखी से भी तप्त लैडेल में धम्म से गिर पड़ा। कौन था वह अभागा? पूरे शॉप में अफरा-तफरी मच गई। विभाग के काफी लोग जुट आए....लेकिन कोई कुछ नहीं कर सकता था, चूँकि सभी जानते थे कि वह आदमी गिरते ही ठोस से द्रव में बदलना शुरू हो गया होगा। उस बाल्टी से छिटककर एक बूँद भी अगर जिस्म पर पड़ जाए तो गोली लगने से भी बुरा घाव बन जाता है। यहाँ तो भरे लैडेल में ही वह बदनसीब गिर पड़ा। डिविजनल मैनेजर (विभाग प्रमुख) सहित इस स्टील मेकिंग विभाग एल डी-१ शॉप के सारे अधिकारी इकट्ठे हो गए। उनमें खड़े-खड़े तुरंत मँत्रणा हुई और एक निश्चय के तहत सभी वर्करों से कहा गया कि वे इसी वक्त कॉन्फ्रेंस रूम में उपस्थित हों, वहाँ हाजिरी ली जाएगी।

एक शिफ्ट के लगभग सौ आदमी की भीड़ में सभी लोग अपने-अपने नजदीकी आदमी को ढूँढ़ने में लगे थे। इस भीड़ में सीनियर मेकेनिक तरुण भी अब तक शामिल हो गया और वह अपने इलेक्ट्रिशियन दोस्त संदीप की टोह लेने लगा। संदीप उसे हठात् कहीं नजर नहीं आया, फिर भी उसे यह खयाल में भी लाना अच्छा नहीं लगा कि ऐसा दुर्भाग्य उसके दोस्त का हो सकता है।

मौके पर पहले से मौजूद कई वर्करों ने देखा कि महज एक क्षण के लिए लैडेल में जरा-सी तड़फड़ाहट हुई और सब कुछ शांत हो गया। जीवन और मृत्यु के बीच सचमुच कितना कम फासला है और जीवन को बचाने में इस शरीर का कवच कितना क्षणभंगुर है!

मातम, मायूसी और असमंजस में डूबे लोग कॉन्फ्रेंस रूम पहुँचे। अब तक शॉप के कोने-कोने से 'ए` शिफ्ट के पूरे लोग आ चुके थे। तरुण की निगाहें लगातार संदीप को ढूँढ रही थीं, लेकिन वह कहीं दिख नहीं रहा था। वहाँ अटेन्डेन्स की कम्प्यूटर शीट मँगाई गई और उसके अनुसार एक-एक आदमी की मौजूदगी पर टिक-मार्क लगाया गया।

डी एम को यह शक था कि अवकाश-ग्रहण उम्र के करीब पहुँचे किसी बूढ़े कर्मचारी ने जान-बूझकर अपनी मौत मोल ली होगी। चूँकि कारखाने के भीतर सांघातिक (फेटल) दुर्घटना की अवस्था में मरे कर्मचारी के किसी वारिस को सहानुभूति आधार पर तत्काल नौकरी देने का प्रावधान अब भी समाप्त करना संभव नहीं हो पाया था। पहले आम कर्मचारियों को पच्चीस साल सेवा देने के बाद अपने एक बेटे या दामाद के लिए नौकरी पाने की सुविधा बहाल थी, जिसे अब कंपनियों में वैश्विक प्रतिस्पर्धा शुरू होने के बाद खत्म कर दिया गया था। चूँकि अब पुरानी तकनीक पर आधारित ज्यादा लागत पर कम गुणवत्ता के माल उत्पादित करनेवाले शॉप बंद कर दिए गए थे और उनमें काम करनेवाले कर्मचारी वालिंटियरली रिटायर्ड करा दिए गए थे।

डी एम की आशंका से अवगत होकर तरुण में एक बेचैनी समा गई। ज़माने का यह कितना निर्लज्ज, विद्रूप और भयावह दौर था कि अपनी संतान के अनिश्चित भविष्य को एक अदद नौकरी से नवाज़े जाने के लिए अपनी जान तक देनी पड़ जाए।

तरुण का अंतःकरण ढेर सारी आकुलताओं से भर उठा। हाजिरी के बाद जो परिणाम सामने आया, उससे डी एम का संशय तो गलत साबित हुआ, लेकिन तरुण का संशय एक हृदयद्रावक सच में बदल गया। लैडेल में गिरनेवाला वर्कर संदीप ही था जिसे उसकी आँखें शुरू से ही नदारद पा रही थीं। संदीप बूढ़ा नहीं बल्कि छब्बीस-अट्ठाईस वर्ष का हृष्ट-पुष्ट नौजवान था। उसने आत्महत्या नहीं की थी बल्कि ओवरहेड क्रेन की कोई इलेक्ट्रिकल गड़बड़ी ठीक करने के लिए फोरमैन ने उसे ऊपर भेजा था और वहाँ से वह काम करते हुए गिर पड़ा। फर्श पर गिरा होता, फिर भी वह मर तो जाता ही, लेकिन तब उसका क्षत-विक्षत पार्थिव शरीर रह जाता संस्कार के लिए....मौत की पुष्टि के लिए।

तरुण की आत्मा एकदम बिलख उठी। आज ही शाम को उसे बहन का तिलक चढ़ाने जाना था। तरुण से भी उसने साथ चलने के लिए कह रखा था। सुबह दोनों ने साथ ही कम्प्यूटर में हाजिरी के लिए अपने-अपने कार्ड पंच किए थे।

देह जलने की एक तीव्र गंध पूरे शॉप में फैल गई। कॉन्फ्रेंस हॉल में सबने यह गंध महसूस की और भीतर ही भीतर सभी घुटकर रह गए। लग रहा था जैसे वे किसी श्मशान में चिता के पास बैठे हों। तरुण के भीतर इस गंध ने एक हाहाकार जैसा मचा दिया। लगा वह फफक कर रो पड़ेगा। उसकी आँखें पसीज गईं।

डी एम ने सबको संबोधित किया, "दोस्तो, संदीप एक मेहनती और काफी अनुभवी इलेक्ट्रिशियन था। इस सदमे से मुझे गहरा धक्का पहुँचा है। मैंने तो सोचा था कि कोई रिटायरिंग एज वर्कर जान-बूझकर मरा है। संदीप जैसा डायनेमिक और स्मार्ट लड़के के बारे में तो मैं ऐसा सोच भी नहीं सकता था। लेकिन होनी पर अख्तियार ही किसका है! हमें अब एक बड़ी चुनौती का सामना करना है।``

डी एम ने कुछ देर के लिए एक विराम ले लिया। सबके चेहरे पर अगले वाक्य की उत्सुकता टंक गई। उसने आगे कहा, "आप सबको मालूम है कि आई एस ओ ९००२ प्रमाणपत्र हासिल करने के लिए पिछले एक साल से हमारी तैयारी चल रही है। आप इससे भी अवगत हैं कि अंकेक्षण करनेवाली टीम यहाँ आई हुई है और हमारे डॉक्यूमेंटेशन सिस्टम की ऑडिट कर रही है। कभी भी वह टीम शॉप फ्लोर में आकर आपलोगों से भी कोई सवाल कर सकती है। आज इस दुख की घड़ी में मेरा यह सब कहना अटपटा लग रहा होगा।``

डी एम ने रुककर सबके उदास चेहरे की प्रतिक्रिया देखी और आगे कहने लगा, "लेकिन इस हादसे के कारण जो परिस्थितियाँ बन गई हैं, उसी के मद्देनजर यह सब कहना ज्यादा जरूरी हो गया है। आपको बताया जा चुका है, फिर भी मैं खास तौर पर आज एक बार और दोहराना चाहता हूँ कि आई एस ओ ९००२ का विश्वस्तरीय गुणवत्ता प्रमाणपत्र हमें नहीं मिला तो हमारा बनाया हुआ माल कोई नहीं खरीदेगा और दुनिया के सामने मुकाबले में हमें कोई तवज्जो नहीं देगा। परिणाम यह होगा कि हमारा यह विभाग बंद हो जाएगा और सबका भविष्य मुश्किलों में फँस जाएगा।``

डी एम ने तनिक रुककर कर्मचारियों के चेहरे पर उभर आई चिंता को एक बार फिर लक्ष्य किया और अपना वक्तव्य जारी रख रखा, "उस ऑडिट टीम को अगर मालूम हो गया कि इतनी बड़ी दुर्घटना यहाँ हो गई है तो हमारे प्रति उनका इम्प्रेशन डगमगा सकता है और वे निगेटिव रिमार्क कर सकते हैं। इस शोकाकुल अवस्था में मुझे यह सब कहते हुए बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा, लेकिन क्या करूँ, आखिर जो छोड़कर चले जाते हैं, उसके परिजन भी उसके गम में अपनी जिंदगी रोक नहीं देते। फ्रेंड्स, आपको जरूर बुरा और नागवार लगेगा सुनकर, लेकिन हमें यह करना होगा। संदीप की मौत की खबर हमें अपने सीने में ही दफ्न कर देनी होगी। हमें छाती पर पत्थर रखकर यह कहना होगा कि यहाँ कोई ऐसी अप्रिय घटना नहीं हुई। संदीप को आज हम अनुपस्थित दिखा देंगे। आपको अपने और अपने परिवार की परवरिश के लिए भूल जाना होगा कि आपने यहाँ कोई हादसा होते देखा है।``

कुछ देर गहरी खामोशी छा गई जैसे काली अँधेरी रात की भयानक नीरवता उतर आई हो।

तरुण रोक नहीं पाया स्वयं को और कह उठा, "ऐसा कैसे हो सकता है सर?`` वह अपनी कुर्सी से खड़ा हो गया, उसकी आँखें आँसुओं से डबडबा गईं, "सुबह संदीप मेरे साथ ही आया था ड्यूटी। आज शाम उसे वर्षों से विवाह की प्रतीक्षा कर रही बहन के लिए तिलक चढ़ाने जाना था। उसके माँ-बाप को यह तो पता होना चाहिए कि उसके लाड़ले बेटे की ड्यूटी इतनी लंबी हो गई कि वह अब कभी घर वापस नहीं आएगा। मुझसे ही वे पूछने आएँगे.....मैं कैसे उनसे झूठ बोल सकूँगा सर?`` बोलते-बोलते तरुण का बिलखना जोर पकड़ गया।

डिविजनल मैनेजर ने हमदर्दी जताकर सांत्वना देने का ढोंग करते हुए तरुण को एक ऑफिसर के साथ अपने चैम्बर में भिजवा दिया। अफ़सोस की मुद्रा में देखते हुए उसने फिर कहा, "मैं तरुण की भावना समझ सकता हूँ, लेकिन हमें इस मौके पर प्रैक्टिकल होना ही पड़ेगा। मैं नहीं समझता कि उसके परिवार के चार-पाँच जनों को संतुष्ट करने के लिए यहाँ काम करनेवाले चार सौ आदमी को जोखिम उठाना चाहिए। इसलिए यह मेरा अंतिम फैसला है कि आप में से किसी के मुँह से किसी के भी सामने यह नहीं निकलना चाहिए कि आपने यहाँ कोई दुर्घटना देखी है। इसी में सबकी खैर है.....ठीक है, अब आपलोग जा सकते हैं।``

जब सभी वहाँ से चलने लगे तो ऐसा लगा कि हरेक के माथे पर धर्मसंकट का एक पहाड़ लद गया है, जिसे बहुत दूर और देर तक ढोना आसान नहीं है। उन्हें यह भी लगा कि डी एम के कहने के लहजे में सिर्फ परामर्श नहीं आदेश भी है जिसकी अवहेलना करने पर वे अनुशासनात्मक कार्रवाई के तहत सख्ती भी बरत सकते हैं।

डी एम ने तरुण को अपने ठंढे कमरे में बैठाकर ठंडा पानी पिलवाया और उसके जज्बात को कद्र करने की भंगिमा दिखाकर समझाने की कसरत शुरू कर दी, ``तरुण, मैं जानता हूँ कि संदीप तुम्हारा बहुत घनिष्ट दोस्त था, तुम्हारे लिए मुश्किल है उसकी मौत को पचा लेना। लेकिन तुम पढ़े-लिखे एक होशियार आदमी हो, कंपनी और सभी कर्मचारियों के हितों को देखते हुए तुम्हें अपने-आप पर काबू रखना होगा।``

"मुझे कुछ मत कहिए, सर.....मुझे कुछ मत कहिए। इस समय मैं कुछ भी सुनने की स्थिति में नहीं हूँ।`` तरुण अश्रुविह्वल बेचैनी के साथ उसके कमरे से बाहर निकल आया और स्टील ट्रांस्फर कार के पास, जिस पर संदीप की चिता बना हुआ वह लैडेल रखा था, जाकर खड़ा हो गया। उसकी आँखें ठहर गईं खौलते हुए लाल द्रव पर। देह-दहन की एक तेज गंध अब भी बाल्टी से बाहर निकल रही थी। उसका क्रन्दन कर रहा अन्त:करण पूछने लगा -

संदीप, मेरे दोस्त! मरने की यह कौन-सी शैली हुई यार? लोग बड़े-बड़े हादसों में दबकर, कुचलकर, कटकर मर जाते हैं.....लाशें विकृत हो जाती हैं.....टुकड़ों में बँट जाती हैं.....लेकिन तुम्हारी यह मौत तो ऐसी मौत है जिसमें लाश निकली ही नहीं.....कहीं है ही नहीं तुम्हारा पार्थिव शरीर। ऐसी मौत तो कभी नहीं देखी-सुनी गई यार। सबकी आँखों के सामने तुम मौत के मुँह में गए.....फिर भी सबको असहाय कर गए.....कुछ भी करने की किसी के पास कोई युक्ति नहीं। सबके सामने निकले तुम्हारे प्राण.....फिर भी किसी को पता नहीं कि तुम्हारी अस्थि कहाँ है....तुम्हारा धड़ कहाँ है.....तुम्हारा शारीरिक ढाँचा कहाँ है? ऐसा लगता है तुम कभी थे ही नहीं....कभी हो ही नहीं।

तुम थे इसका प्रमाण तो है....लेकिन अब तुम नहीं हो, इसे हम कैसे प्रमाणित करें, संदीप? कई दिनों से तुम यही कर रहे थे। मैंने पिछले सप्ताह ही तुम्हें टोका था, "संदीप, कोई छोटा-मोटा नुक्स भी हो तो बिजली ऐसी खतरनाक चीज है जिससे इतना ऊपर चढ़कर अकेले कभी छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए। मैंटेनेंस के लिए दो आदमी के एक साथ रहने का चलन यों ही नहीं बना दिया गया है।``

तुमने कहा था, "सिर्फ पैनल में कोई ओवरलोड स्विच ट्रिप कर जाता है यार। फोरमैन घोचूँ मुझे इस काम के लिए अकेले हाँक देता है.....तुम तो जानते हो कि वह मुझसे कुछ ज्यादा ही मोहब्बत करता है....मैं ऐसा लल्लू हूँ कि मुझे इनकार करना आता ही नहीं।``

अब मैं किससे पूछूँ संदीप कि आज डी एम तुम्हारी मौत की खबर देने से मना कर रहा है, मैं इनकार कैसे करूँ?``

तरुण गहरे अन्तर्द्वन्द्व में निमग्न था तभी अचानक उसे कंधे पर एक सांत्वना भरा स्पर्श महसूस हुआ। वह उसका एक करीबी दोस्त केतन था। उसने कहा, "आओ, चलें तरुण। रुककर भी कुछ पा न सकोगे, यार।``

पीछे विभाग के अन्य अधिकारी प्रबंधकीय रौब में उसे घूर रहे थे। उनकी मुद्रा सख्त और तनी हुई थी, जैसे वे धमका रहे हों कि बहुत नौटंकी हो गई.....शराफत से नहीं मानोगे तो हमें टेढ़ा बनना भी आता है।

कुछ ही देर बाद देखा गया कि स्टील ट्रांस्फर कार पर से लैडेल ओवरहेड क्रेन द्वारा उठाया जाने लगा। तरुण हैरानी से देखने लगा कि आखिर क्या करनेवाले हैं ये लोग इस चिता में बदले हुए अजूबे कैम्बिनेशन से बने इस मोल्टेन स्टील का? क्रेन ने उसे ले जाकर १६०० डिग्री सेंटीग्रेड पर गर्म वेसेल में दोबारा हीट करने के लिए उढ़ेल ढाला। अब संदीप के जिस्म की बची-खुची गाँठें भी पिघलकर तरल बन जाएँगी। इस चरम दुर्गति पर तरुण और भी कातर हो उठा। उसकी आत्मा चीत्कार उठी - हाय संदीप! तुम्हारा जिस्म अब पूरी तरह इस्पात में एकाकार हो गया। मतलब अब तुम पुल बन जाओगे....रेल की पटरी बन जाओगे....डब्बे बन जाओगे.....जहाज बन जाओगे....कूलर, फ्रिज,

गैंता, कुदाल, पाइप, खंभे, छुरी, चाकू, बंदूक, रिवाल्वर, तोपखाना और पता नहीं किस-किस चीज में रूपांतरित हो जाओगे। लेकिन नहीं ढलोगे तो फिर से आदमी में....और आदमी में नहीं ढलोगे तो अपनी नवविवाहिता के सुहाग, बूढ़े कृशकाय पिता की लाठी और शादी की उम्र पार कर रही अपनी कुँवारी बहन की राखी से तुम्हारा कोई संबंध नहीं रह जाएगा। आज भले ही आदमी की कीमत इस्पात से सस्ती हो गई हो, लेकिन इस्पात बनानेवाली कंपनी आदमी नहीं बना सकती, मेरे दोस्त। जबकि आदमी ही हजारों-लाखों मिलियन टन इस्पात बनाता है और बनाता चला जाएगा।

केतन ने तरुण की पीठ थपथपाई, "चलो तरुण, घर चलें.....अब संदीप कहीं नहीं है।``

"लेकिन केतन....संदीप यहाँ था सुबह से इसी जगह।``

"कोई साक्ष्य अब नहीं है उसके यहाँ होने का।``

"कम्प्यूटर है....यहाँ के दर्जनों लोग हैं....मैं हूँ....।``

"कम्प्यूटर में उसकी हाजिरी थी, अब नहीं है। लोगों ने उसे देखे थे, अब वे भी अनदेखे हो गए हैं। एक तुम हो, तुम्हें भी अब तय कर लेना है कि ज्यादा जरूरी क्या है....संदीप की मृत्यु का पर्दाफाश करना या अपनी नौकरी की सांस कायम रखना।``

संदीप के पिता इसी कारखाने से एक रिटायर वर्कर थे। कई दिनों तक वे संदीप के लापता होने की टोह लेते रहे, तरुण से भी कई बार मिले। सबके चेहरे पर चढ़े मुखौटे की परख कर लेने में उन्हें कोई दिक्कत नहीं हुई। तरुण अपने झूठ पर एक मर्मांतक तकलीफ से जूझता रहा। अंततः उसने कुछ तय किया और एक शाम उसके कदम संदीप के घर की तरफ बढ़ते चले गए। रास्ते में ही संदीप के पिता मिल गए.....एक मातम से घिरे हुए हताश, उदास। तरुण ने कहा, "मैं आपके ही घर जा रहा था।``

बूढ़े ने ताज्जुब से निहारा, "तुम क्यों तकलीफ कर रहे थे.....मैं तो आ ही रहा था तुम्हारे घर.....तुम्हारी चुप्पी को सुनने....तुम्हारी बदहवासी को पढ़ने।`` उसकी बेचारगी को भाँपते हुए उन्होंने आगे कहा, "आज से बीस-पच्चीस साल पहले मजदूरों में इतनी आग और एकता हुआ करती थी कि किसी भी बेईमानी एवं नाइंसाफी के खिलाफ लोग एक साथ आन्दोलन करने पर उतारू हो जाते थे, जबकि उस समय प्रायः लोग गहन अभावों और मुश्किलों में जीने को बाध्य थे।``

तनिक रुककर उन्होंने तरुण की खामोशी की नब्ज टटोली, फिर कहा, "आज लोगों के पास साधन हैं, सुविधाएँ हैं, फिर भी इनकी मानसिकता इतनी तटस्थ और नपुंसक हो गई है कि कंपनी के अंदर या बाहर किसी भी नाजायज बात पर होंठ फड़फड़ाने की भी हिम्मत नहीं रह गई।``

वे जरा रुके और अपनी लय फिर पकड़ ली, "मेरे एक साथी का हाथ कट गया था। प्रबंधन उसकी असावधानी बताकर मुआवजा देने से आनाकानी करने लगा था। उसे हक दिलाने के लिए विभाग के सारे कामगारों ने काम बंद कर दिया था। विकास के रास्ते में असहमति का होना बहुत जरूरी है.....और इस असहमति को व्यक्त करने का माद्दा न हो तो समझ लेना चाहिए कि बहुत बुरे दिन आने वाले हैं।``

तरुण की आँखें संदीप के पिता के तात्पर्य टटोलती हुई विस्फारित होती जा रही थीं। वे कुछ देर के लिए चुप हो गए और फिर उनका गला भर आया। आँखों से आँसू की कई बूँदे टप-टप चू पड़ीं। लरजते स्वर में उन्होंने कहा, "तरुण, सात दिन हो गए, तुम्हारे होठों से एक लफ्ज तक नहीं फिसला। तुम्हारे भीतर जो एक द्वन्द्व चल रहा है, उसे मैं समझ सकता हूँ बेटे। संदीप तुम्हारा जिगरी दोस्त था.....इसलिए पुष्टि तो तुम्हें ही करनी होगी....तुम बोलोगे तभी मैं इसे अंतिम सच मानूँगा। लैडेल में जो आदमी गिरकर पूरी तरह खत्म हो गया, वह मेरा बेटा संदीप ही था न...बोलो तरुण, बोलो...संदीप ही था न वह?``

तरुण रोक न सका खुद को और उनके गले से लिपटकर फफक पड़ा, "हाँ अंकल, हाँ....वह अभागा संदीप था...आपका बेटा संदीप...मेरा दोस्त संदीप। मुझे माफ कर दीजिए अंकल....मैं तो संदीप से भी अभागा हूँ और उससे भी ज्यादा मरा हुआ कि उसके मरने की खबर तक देने की प्राणशक्ति जुटा नहीं सका....।``

संदीप के पिता उसकी पीठ थपथपाते रहे...वह जार-जार रोता रहा....।

(२३ मार्च २००९ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

हीरो

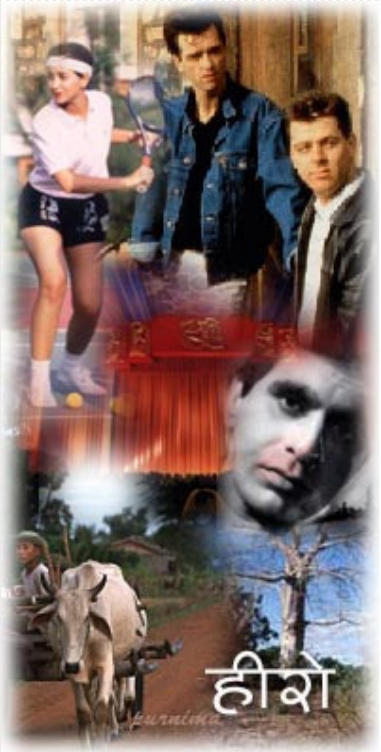

हमें उन दिनों अपना देश बहुत अच्छा लगता था और देश में अपना गाँव सबसे अच्छा लगता था और अपने गाँव में रदीफ रौनक बेमिसाल लगता था और रदीफ रौनक में उसकी फिल्मी हीरो बनने की खब्त तथा उसकी हैरतअंगेज मोहब्बत हमें खास तौर पर आकर्षित करती थी। गाँव के हम उम्र स्कूली लड़के आई ए एस, आई पी एस, डॉक्टर, इंजीनियर जैसे कैरियर के बड़े-बड़े पदों के सपने देखते थे मगर एक अकेला था रदीफ जो सिर्फ और सिर्फ हीरो बनने की दिलचस्प तैयार में संलग्न था।

हम उसके हाव-भाव, क्रिया-कलाप, रंग-ढंग पर बेहद मुग्ध थे। इतना ही मुग्ध हम उसकी मोहब्बत पर भी थे। चूँकि जिस लड़की से वह प्यार करता था वह गाँव की कोई मामूली लड़की नहीं थी। वह इस इलाके के इकलौते राजकीय अस्पताल के एक मसीहा की तरह लोकप्रिय डॉक्टर की लाड़ली बेटी थी। वह एक बड़ी कोठी में रहती थी और एक बड़े शहर में रहती थी ज़हीन थी, खूबसूरत थी, आलीशान थी, आम लोगों के लिए बेपहुँच और हम लोगों के लिए कौतूहल का विषय थी। हम लोग उससे बात तक करने की औकात खुद में नहीं देखते थे वह हमसे बात करे, हमें देखे, इस लायक हम थे भी नहीं। हमारी शक्लें लुटी-पिटी जैसी दिखती थीं अभावों और विपन्नताओं ने हममें एक भी चमक महफूज नहीं रहने दी थी। मगर क्या ही फख्र का सबब था कि रदीफ को वह दिलोजां से चाहती थी। रदीफ की इस खुशकिस्मती पर हमें घनघोर रश्क होता था।

शाम को मित्र-मंडली के सभी लड़के रदीफ के सायबाने पर एक साथ ही अड्डा मारते थे। वह सायबाना हमारे लिए एक साथ क्लब था, लाइब्रेरी था, चिंतन-गृह था, सेमिनार हॉल था। रदीफ ने अपनी कई भंगिमाओं की खूबसूरत तस्वीरें दीवार पर लगा रखी थीं और इन्हीं तस्वीरों में एक बड़ी तस्वीर फ्रेम में मढ़ी हुई दिलीप कुमार की थी। दिलीप कुमार की तस्वीर उसके लिए वैसे ही महत्त्वपूर्ण थी जैसे एकलव्य के लिए द्रोणाचार्य की मूर्ति। उसने दिलीप कुमार की तस्वीर के ठीक बाजू में एक बड़ा-सा आईना भी लगा रखा था जिसे देख-देखकर वह रिहर्सल किया करता था, कुछ इस तरह कि वह खुद को खुद भी देख सके और दिलीप कुमार को भी दिखा सके। चेहरे पर कई मुद्राएँ और आव-भाव लाकर वह कई तरह के संवाद उच्चरित करता था रोते हुए, हँसते हुए, घिघियाते हुए, खिसियाते हुए, भड़कते हुए, झिड़कते हुए, चिढ़ते हुए, चिढाते हुए। उसके गैरहाजिर होने पर भी उसके अल्फाज सायबाने पर हमें गूँजते से प्रतीत होते थे और आईना भी उसकी कई छवियाँ दिखाता सा प्रतीत होता था। वैसे कुछ संवाद जिन्हें वह बार-बार दोहराता था, हमें भी याद हो गये थे। इन्हीं में एक था, "बहुत हो गया, अब तुम्हें हम छोटे और गरीब लोगों को भी आगे बढ़ने के मौके देने होंगे हमारे लिए भी अपनी काबलियत के मुताबिक मुकाम पर पहुँचने के रास्ते छोड़ने होंगे। अब यह नाइंसाफी नहीं चलेगी कि छोटे लोग सब दिन छोटे रहें और बड़े घर के नालायक लोग भी बड़े बनते रहें।"

हमें इस संवाद से ऐसा लगता था जैसे रदीफ अपनी और हम सबकी भावनाओं और स्थितियों का इजहार कर रहा है। मोहब्बत के बारे में उसका एक सुपरिचित डायलॉग था, "तुम्हारी यादों को अपने सीने में महसूस करता हूँ तो तमाम कमियों, तकलीफों और जिंदगी से हजार शिकायतों के बावजूद लगता है कि मैं दुनिया का सबसे खुशनसीब आदमी हूँ। सोचता हूँ कि तुम बेवफा भी हो जाओगी तब भी जीने के लिए मेरे पास यह एहसास काफी होगा कि कभी तुमने मुझे दिलोजां से चाहा था।"

रदीफ खुद को रगड़ता और माँजता रहता। इन्हीं अभ्यासों के बीच सोगरा का नौकर ममदू मियाँ उसे बुलाने आ जाता, "मोहतरमा ने आपको याद किया है।"

रदीफ की आँखों में जैसे सैंकड़ों जुगनू जगमगा उठते थे। वह बेहद आतुरता से दोस्तों को इजाजत माँगने वाली नज़र से देखने लगता था। सर्वत्र इजाजत ही इजाजत बिछी होती थी और हौसला आफजायी का मानो एक गागर छलक उठता था जाओ मियाँ, जल्दी जाओ, दौड़ पड़ो, खुदा की इस रहमत का एहतराम करो।

रदीफ चला जाता था हकीकत की एक रंगीन दुनिया में मानो किसी विजेता की तरह एक पुरस्कार लेने हम गर्व से तालियाँ बजाते उसे जाते हुए देखते रहते थे और उसके बारे में तरह-तरह से सोचते हुए गुम हो जाते थे तसब्बुर की एक सफेद और स्याह दुनिया में। सोगरा कह रही होगी तुम हो तो दुनिया कितनी हसीन है, जो तुम नहीं तो कुछ भी नहीं हैं। सामने कवाब और पकोड़े परोसे जा रहे होंगे, सोगरा अपने हाथों से उसे खिला रही होगी और रदीफ अपने हाथों से सोगरा को खिला रहा होगा। दोनों टेनिस खेलते हुए नेट के पार बहुत आसान बॉल डाल रहे होंगे रदीफ चाहता होगा कि सोगरा जीत जाये और सोगरा चाहती होगी कि रदीफ जीत जाये।

कोठी की चारदीवारी के अंदर ही टेनिस कोर्ट बना था जिसमें वह शाम को टेनिस खेलती थी। जब उसके घर में साथ देने के लिए कोई नहीं होता था तो वह रदीफ को बुलावा भेज देती थी। एक बार रदीफ की गैरहाजिरी में उसने मुझे बुलवा लिया था, पर मेरा दुर्भाग्य कि मुझे टेनिस खेलना कभी नहीं आया। मैं खेल नहीं पाया तथापि उसके बुलाये पर धन्य-धन्य महसूस कर रहा था। किसी हूर से भी पुरकशिश सोगरा को, इतने करीब से कि हाथ बढ़ाकर उसे छुआ जा सके, मैं देख सकूँगा, इसकी कभी मैंने कल्पना नहीं की थी। मैं तो यह भी नहीं सोच सकता था कि वह मुझे नाम से जानती होगी। रदीफ ने शायद अपने सारे दोस्तों के बारे में उसे बता रखा था। मुझे लगा था कि हम एक ही शृंखला की कड़ियों में गुँथे हैं। हम रदीफ से जुड़े हुए और रदीफ सोगरा से जुड़ा हुआ।

रदीफ से उसकी नजदीकी पर घरवालों को रजामंदी थी। रदीफ था ही ऐसा कि कोई भी उसकी तरफ बरबस खिंच जाता था। नाराज़, असंतुष्ट या चिढ़ाने के तत्व गोया उसमें थे ही नहीं या थे भी तो उन्हें तुरंत ढूँढ़ लेना मुमकिन नहीं था। सोगरा के अब्बा डॉक्टर शौकत तक को यह यकीन हो गया था कि रदीफ आज न कल हीरो बनकर ही रहेगा।

वह चार-पाँच महीने में एक बार बंबई चला जाता था और लौट कर आने पर वहाँ के चटपटे किस्से सुनाता था। तब हमें यह मालूम नहीं था कि बंबई में एक फिल्म इंडस्ट्री है। रदीफ से हमें यह ज्ञात हुआ था कि हिन्दी फिल्में बंबई में ही बनती हैं। तब हम यह समझते थे कि जैसे उद्योग होता है लोहे का या कपड़े का और उससे लगातार लोहा और कपड़ा बनता है, वैसे ही फिल्म उद्योग भी एक लम्बी-चौड़ी चारदीवारी के अंदर चलता होगा और उससे लगातार फिल्में बनती रहती होंगी।

रदीफ बंबई में कई फिल्मवालों से जाकर मिलता था, उनमें दिलीप कुमार जरूर होते थे। उसके अनुसार दिलीप कुमार से उसकी काफी नज़दीकी हो गयी थी और वे उसकी वाकई मदद करना चाहते थे। हम लोगों को बड़ा कौतूहल होता था और उसके भाग्य पर ईर्ष्या भी कि दिलीप कुमार जैसे सुपरस्टार से वह मिल बतियाकर आ जाता है। हमें रदीफ से ही जानकारी मिली थी कि दिलीप कुमार मुसलमान हैं और उनका असली नाम युसुफ खान है। हमारे ताज्जुब करने पर रदीफ ने कई अन्य हीरो-हीरोइन के नाम गिनवा दिये थे जो मुसलमान थे और हिन्दू नाम रखे हुए थे। पता नहीं क्यों इस मुद्दे ने मुझे यों ही सोचने पर मजबूर कर दिया थ कि आखिर वे कौन से कारण होते हैं कि एक आदमी को अपना नाम बदलना पड़ जाता है। मैंने यह जानना चाहा था कि कोई हिन्दू भी हैं जिसने मुसलमान नाम रख लिया है? इसका ठीक-ठीक जवाब रदीफ को भी मालूम नहीं था। एक दिन तो हम सन्न रह गये जब उसने बताया कि वह भी अपना नाम बदल रहा है। फिर उसने अपना नाम दर्पण कुमार रख दिया। उसने ऐसा क्यों किया, हमारे बहुत पूछने पर भी कोई माकूल जवाब देने में वह सक्षम नहीं हुआ।

रदीफ जो करता था, हम अनाड़ी और गँवई लड़के मान लेते थे कि हीरो बनने के लिए ऐसा करना जरूरी होता होगा। वह फिल्मी गाने गाता था, लय और राग में डूबकर पूरी तन्मयता से। हमें उसे सुनना अच्छा लगता था और हम ऐसा समझते थे कि हीरो बनने के लिए गायक होना भी जरूरी है। तब हमें यह पता नहीं था कि पर्दे पर हीरो सिर्फ होठ चलाता है, अभिनय करता है और आवाज पीछे से किसी और की होती है। उन दिनों हम यही जानते थे कि हॉल में लगी फिल्म के हीरो-हीरोइन सहित सभी कलाकार पर्दे के पीछे मौजूद होते हैं, इसलिए हमें बड़ा ताज्जुब हुआ था यह जानकर जब रदीफ ने बताया कि एक फिल्म एक साथ कई शहरों और कई हॉलों में चलती हैं।

हमें अपना होम टाउन नवादा जाकर फिल्में देखने का मौका लगभग नहीं के बराबर मिलता था। अट्ठारह साल की उम्र तक मैंने महज तीन फिल्में देखी थीं वे भी धार्मिक-पौराणिक। मेरे दूसरे साथियों का भी यही हाल था। हमारे पास पैसे भी नहीं होते थे और पढ़ने-लिखने की उम्र में फिल्म देखना तब अच्छा भी नहीं माना जाता था। मगर रदीफ नवादा के सिनेमा हॉलों में लगी हर नयी फिल्म जाकर जरूर देखता था। घरवालों की तरफ से उसे पूरी छूट थी, पूरा शह और समर्थन प्राप्त था आखिर उसे हीरो जो बनना था। उसके दो भाई थे, वे कलाली के मैनेजर थे और अच्छा कमा लेते थे। हीरो की तरह दिखने के लिए हीरो बनने के लिए जिन सहूलियतों की रदीफ को तलब होती थी, उन्हें आसानी से वे उपलब्ध करवा देते थे। वह नये-नये फैशन के पतलून, कमीज और जूते पहनता था।

लेटेस्ट पहनावा क्या है फिल्मी दुनिया का या फिर अमीर-रईस लोगों का, रदीफ को देखकर हम अवगत हो लेते थे। उसने अपना एक कान छिदवाकर उसमें बाली पहन ली थी। हमने पहली बार यह जाना था कि औरतों की तरह मर्दों को भी अब कान में बाली और इयरिंग पहनना अच्छा लगने लगा है। हम यों ही सोच गये थे कि कल को कहीं ये लोग चूड़ी भी तो पहनने नहीं लगेंगे! और यह सच हो गया था रदीफ ने चूड़ी की तरह का अपने दाहिने हाथ में एक कड़ा पहन लिया था। आगे उसने हमारी जानकारी को दुरूस्त करते हुए कहा था कि आजकल पहनावे के मामले में औरत और मर्द में कोई फर्क नहीं हैं। रदीफ बाल कटवाने और चेहरे पर मेकअप लेने में भी बहुत खास ध्यान देता था। हमारे बाल अक्सर बेतरतीब और बढ़े होते थे। गाँव के इकलौते नाई की उपलब्धता और स्किल पर ही हमारे हेयरकट का अंजाम बँधा होता था। मगर रदीफ मियाँ हर पखवारे नवादा जाकर अपना हुलिया ठीक करवाता था और जहाँ ठीक करवाता था उसका नाम मेंस ब्यूटी पार्लर बताता था। मर्दों के लिए भी शृंगार-गृह होता है, यह हमारे लिए एक नयी खबर थी। वह चेहरे पर दाढ़ी नहीं रखता, मगर कभी-कभी अजूबे में नक्काशीदार दाढ़ी और मूँछें उगा लेता था। ऐसे में उसका हुलिया बेहद अटपटा हो जाता था, फिर भी हम लड़कों पर उसकी धाक जम जाती थी।

रदीफ के हीरो बनने में कोई खास प्रगति नहीं हो रही थी, बावजूद इसके उसका बार-बार बंबई जाना हमें बहुत रोमाँचित कर देता था और यह भी उसकी उपलब्धि जैसा लगता था। हम उसके इस नसीब पर मुग्ध रहते थे कि बंबई जैसा महानगर वह कितनी आसानी से आना-जाना कर लेता है, जबकि हमें अपने होम-टाउन भी जाने के लिए कई बार सोचना पड़ता था। हम लोकल ट्रेन से दो स्टेशन तक सफर करने के मोहताज थे। कभी जाते भी थे तो जोखिम उठाकर विदाउट टिकट। इस चक्कर में हमारे कई दोस्त मॅजिस्ट्रेट चेकिंग में पकड़ा कर तीन-तीन महीने तक जेल काट चुके थे।

रदीफ अक्सर बंबई से एक नाउम्मीदी लेकर खाली-खाली लौटता था, बहुत अर्से बाद वह एक बार उम्मीद से भरा-भरा लौटा। बताया कि इस दफा उसे कामयाबी मिल गयी। दिलीप कुमार साहब ने एक फिल्म में उसे रोल दिलवा दिया, जिसे वह पूरा करके आ गया है। वह फिल्म जल्दी ही रिलीज होगी। नवादा में लगेगी तो हम सभी उसे देखने जाएँगे। वहाँ शूटिंग कैसे हुई इसका बहुत दिलचस्प विवरण उसने सुनाया।

गाँव के हम सभी साथी उस फिल्म के नवादा में लगने का बेसब्री से इंतजार करने लगे। इस बीच पूरे इलाके में यह खबर फैल गयी कि रदीफ फिल्म में हीरो बन गया। रदीफ के रूप-रंग, कद-काठी और अदा-नजाकत के लोग पहले भी प्रशंसक थे, अब उसकी साख बासमती धान की खुशबू की तरह सर्वत्र फैल गयी थी।

राह तकते-तकते काफी दिनों बाद वह फिल्म नवादा में लगी। सभी साथियों ने एक साथ चलकर देखने का कार्यक्रम बनाया। सबने तय किया कि किसी भी तरह टिकट के पैसे जुगाड़ करने हैं आखिर अपने रात-दिन के साथी को पर्दे पर एक्टिंग करते देखने का लोभ कोई कैसे संवरण कर ले। रूखे-सूखे, आधे-अधूरे खाने-पीने वाले साथियों ने भी किसी प्रकार जुटा लिये टिकट के पैसे। जो बहुत यत्न के बाद भी जुटाने में कामयाब न हुए उनके उत्साह को देखकर रदीफ ने अपनी ओर से उनका जिम्मा उठा लिया।

टिकट लेकर जब हम हॉल के अंदर घुसने लगे तो हमारे देहाती फीचर को देखकर गेटकीपर जरा हिकारत से घूरकर एक-एक को गिन-गिनकर रास्ता देने लगा। मुझे जरा ताव आ गया। मैंने उसे औकात बताने वाली मुद्रा में निहारते हुए कहा, "दुग्गी-तिग्गी जैसा सलूक मत करिये गेटकीपर जी, हमलोग कोई मामूली दर्शक नहीं हैं। जो फिल्म देखने जा रहे हैं उसका हीरो हमारे साथ जा रहा है, क्या समझे?"

गेटकीपर ने अब उपहास करती हुई भंगिमा में कहा, "ज्यादा डींग मत हाँको, चुपचाप जाकर आगे बैठ जाओ।"

हम बड़े खुश हुए कि हमें एकदम आगे बैठने के लिए कहा गया। तब हम यही समझते थे कि सिनेमा को भी आगे बैठकर देखने में ही ज्यादा मजा है। पीछे की सीटें आगे से महँगी और अच्छी होती है, यह हमें मालूम नहीं था।

हम सभी साथी फिल्म देखने लगे और अपने हीरो को ढूँढ़ने लगे। क्या यह विचित्र स्थिति थी साक्षात वह हमारे साथ बैठा था, लेकिन हम उसे चित्र में असाक्षात देखने के लिए व्यग्र थे। हमारी उत्सुकता चरम पर थी लग रहा था किसी भी पल रदीफ पर्दे पर प्रकट होकर अपना कमाल दिखाने लगेगा। लगा था कि वह अपना चिर परिचित डायलॉग उच्चारने लगेगा, "बहुत हो गया, अब तुम्हें हम छोटे और गरीब लोगों को भी आगे बढ़ने के मौके देने होंगे हमारे लिए भी अपनी काबिलियत के मुताबिक मुकाम

पर पहुँचने के रास्ते छोड़ने होंगे। अब यह नाइंसाफी नहीं चलेगी कि छोटे लोग सब दिन छोटे रहें और बड़े घर के नालायक लोग भी बड़े बने रहें।" गाँव की नौटंकी में वह बतौर हीरो सबसे जानदार अभिनय करता था और सभी गाँववाले उसे देखकर खूब तृप्त होते थे। रदीफ भी भावाकुल मुद्रा में बैठा था और अपने किरदार के नमूदार होने की विह्वल प्रतीक्षा कर रहा था।

मिनट दर मिनट फिल्म गुजरती गयी हमारी आँखें पर्दे पर एकटक बिछी रहीं एक सीकिया लड़का अकेले पन्द्रह-बीस बदमाशों को मार-मारकर पस्त और धराशायी किये दे रहा था। हमें इस असंभव से काल्पनिक कारनामे को देखकर बहुत खीज हो रही थी। हमारा रदीफ भी नाइंसाफी के सरपट रौंदते घोड़े की लगाम थाम लेता था, लेकिन किसी को घायल नहीं करता था, बल्कि खुद घायल हो जाता था। फिल्म में हीरो जैसे खून की नदी बहा देने पर उतारू था सारा कुछ झूठ, बकवास और हिंसा-रक्तपात से भरा हुआ। इस तरह पूरी फिल्म पार हो गयी। 'दि एँड' की इबारत आकर पर्दे पर ठहर गयी और आम दर्शक उठकर जाने लगे। हम सभी साथी अभी भी बैठे हुए थे। हमें यकीन नहीं आ रहा था कि फिल्म खत्म हो गयी। बिना रदीफ के पर्दे पर आए फिल्म खत्म कैसे हो सकती थी! हमने तो अब तक इस फिल्म में कुछ देखा ही नहीं हमारा पूरा ध्यान तो रदीफ को ढूँढने में लगा रह गया था। इस फिल्म की कहानी और क्लाइमेक्स हमारे लिए सिर्फ और सिर्फ रदीफ था। वह अंत तक न आया तो हमें एकबारगी लगा जैसे हम ठग लिये गये हमारे पैसे नाहक बर्बाद हो गये।

रदीफ एकदम बदहवास और हैरान था ऐसा कैसे हो सकता है। उसने सपने में नहीं हकीकत में बंबई जाकर रोल निभाया है। उसके चेहरे पर एक दयनीयता और कातरता रिसने लगी थी। यह पहला मौका था जब वह हम दोस्तों में सबसे दुखी दिख रहा था। अन्यथा दुखी तो हम ही रहा करते थे और वह हमारे लिए हमेशा धैर्य का अवलंब हुआ करता था। आज उल्टा हो गया था और उसे, हमें हिम्मत देने की जरूरत पड़ गयी थी। मैंने कहा, "रदीफ, तुम्हें ठीक-ठीक याद तो हैं न फ़िल्म का नाम क्या यही था?"

दूसरे साथी ने पूछा, "कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम्हारे लौट आने के बाद उस फिल्म का नाम बदल दिया गया?"

"तुम लोग यकीन करो साथियों, मैंने वाकई इसी फिल्म में काम किया था कई डायलॉग भी मुझसे बोलवाये गये थे। जिन-जिन ऐक्टरों को पर्दे पर तुम लोगों ने देखा, उनके साथ मैं भी था। दिलीप साहब मेरे साथ इस तरह का मजाक नहीं कर सकते।" रदीफ फूट-फूटकर रोने लगा था मानो कोई बहुत कीमती चीज उससे छीन ली गयी।

जब हम गेट से बाहर निकलने लगे तो गेटकीपर तंज भरी आँखों से हम सबके लटके मुँह को घूर रहा था जैसे कह रहा हो कि ये मुँह और मसूर की दाल!

भीतर किसी आलीशान गुंबज के ढह जाने का शोक उसके चेहरे पर छा गया था। हमने उसकी ऐसी हताश सूरत कभी नहीं देखी थी।

रदीफ के सायबाने की सबसे बड़ी पहचान वहाँ लगी दिलीप कुमार की तस्वीर थी। अगले दिन जब हम वहाँ गये तो अनायास हमारी निगाह दीवार के खालीपन पर ठहर गयी। दिलीप साहब की तस्वीर वहाँ नहीं थी पता चला कि रदीफ ने रात में लौटते ही उसे तोड़ दिया था। जिस आईने में देख-देखकर रदीफ अपनी कई शक्लें गढ़ा करता था

भिखारी, मदारी, बूढ़ा, नेता, किसान आदि का, वह आईना भी कई किरचों में बँटा था और अब उससे कोई भी प्रतिबिम्ब सही-सीधा-साबुत नहीं देखा जा सकता था। अलग-अलग टुकड़ों में बँटे हिस्से में खंडित अक्स अब दिखाई पड़ रहे थे जैसे वे रदीफ के चेहरे के नहीं चूर-चूर हुए उसके सपनों के अक्स हों। यों लग रहा था जैसे आईना आज मुँह चिढ़ा रहा है। संवादों की अनुगूँज की प्रतीति भी वहाँ से अब अनुपस्थित हो गयी थी, जैसे आईना और तस्वीर के रूप में दो जिंदगी टूटने का शोक संतप्त सन्नाटा छा गया हो।

अगले दिन सोगरा ने उसे अपने घर में बुलवाया था। उसकी मायूसी और निराशा पर सांत्वना भरा अपना कोमल स्पर्श फिराते हुए कहा था, "इस तरह हार नहीं मानते रदीफ मियाँ। तुम पर्दे पर हीरो बनो या न बनो लेकिन असली जीवन में तुम हीरो बन चुके हो तुम मेरे हीरो हो, इस गाँव के हीरो हो। हीरो का अर्थ सिर्फ इतना ही नहीं है कि वह जवान हो, खूबसूरत हो और सिर्फ पर्दे पर अपना नकली करतब और जांबाजी दिखाये। हीरो बूढ़ा भी हो सकता है, बदसूरत भी हो सकता है। हीरो का मतलब होता है अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीनेवाला ईमानदार, कर्मठ, जुझारू, साहसी इस हिसाब से तुम किसी भी हीरो से कहीं ज्यादा हो। अपने दुखों से तुम कहाँ हारते हो तुम तो गैरों के लिए भी सितम और जुल्म झेल लेते हो! न जाने कितनी बार तुमने दूसरों के बदले अपना सिर फोड़वाया है और मैने उसकी मलहम-पट्टी की है। तुम्हारे लिए मेरी मोहब्बत तुम्हारे इन्हीं जुनूनों और जिदों से शुररू होती है।"

यह सच था गाँव के कितने ऐसे मामले थे जिसमें कोई रुचि नहीं लेना चाहता था, मगर रदीफ था कि खुद को रोक नहीं पाता था और चाहे कितनी बड़ी जोखिम हो, उठा लेता था। सोगरा के जेहन में कुछ वाकियात तो एकदम गुदने की तरह गुद गये हैं।

.....

इलाके में कहीं भी चोरी-डकैती होती थी तो गाँव में हरिजन टोली के कुछ ऐसे परिवार थे, जिनके मर्द शक के आधार पर गिरफ्तार कर लिये जाते थे। उन्हें बुरी तरह बेमतलब टार्चर किया जाता था, उनसे गिरोह का नाम पूछा जाता था, जबकि वे बिल्कुल अनजान और बेकसूर होते थे। दुर्भाग्य का यह सिलसिला उन अभागे परिवारों की कई पीढ़ियों से चला आ रहा था। रदीफ ने इस ज्यादती को अकेले दम पर मुखालफत की। थानेदार के डंडे खाये।

पट्टी करवाने के लिए डॉ. शौकत के घर गया तो वे दास्तान सुनकर हैरान रह गये। किस मिट्टी का बना किस जमाने का लड़का है यह! आज जब हर जगह जिंदा गोश्त नोंच डालने के लिए खुदगर्जी के गिद्ध मंडरा रहे हों, यह लड़का फकीराने अंदाज में दूसरों की फिक्र में खुद को मुसलसल हलाल कर रहा है। शौकत साहब को उस पार बहुत प्यार आया। उन्होंने दवा से ज्यादा अपनी हमदर्दी के मलहम लगाये उसके जख्मों पर। सोगरा दूर से देख रही थी पढ़ रही थी रदीफ के चेहरे पर न कोई अफसोस था, न कोई तनाव और न कोई विकार जैसे कोई सूफी संत हो।

रदीफ ने आगे मुसहरी के लड़कों को गोलबंद किया और जिलाधीश एवं पुलिस अधीक्षक के पास जाकर इंसाफ की गुहार लगायी।

.....

आसपास के कई गाँवों का एक संयुक्त कब्रिस्तान था। पता नहीं किसे क्या तकलीफ हुई शायद मुर्दों को भी बिन गाँव का होकर रहने देना उन्हें पसंद नहीं आया या रात में दो गाँव के मुर्दों को आपस में झगड़ते देख लिया होगा किसी ने जितने गाँव उतने हिस्से में कब्रिस्तान का बँटवारा कर दिया गया और उसमें चारदीवारी उठायी जाने लगी। हन्नू जुलाहे की कोने में एक जमीन थी जिसके बिना चारदीवारी आयताकार नहीं हो पा रही थी। गाँव के मातवर और नुमाइंदा टाइप लोगों ने तय कर लिया कि एक कीमत देकर उसकी जमीन कब्रिस्तान में शामिल कर ली जाये। इसके लिए उसकी रजामंदी की भी जरूरत नहीं समझी गयी। हन्नू गरीब आदमी था और उसके चंद उपजाऊ खेतों में यह एक खास खेत था। इस नाजी फैसले पर उसकी तो घिग्घी बँध गयी ऐसे नाजुक मजहबी मामले से कैसे टकराये वह अकेले!

रदीफ हन्नू की तरफ से सामने तन कर खड़ा हो गया। कहा, "कब्रिस्तान की शक्ल टेढ़ी हो जायेगी तो ऐसा नहीं है कि मुर्दे उसमें सुपुर्द-ए-खाक होने से इंकार कर देंगे या फिर दफन होने पर उनकी रूहें भटकने लगेंगी। कब्रिस्तान या श्मशान की चोहदी बडी हो, चौकोर हो, इससे ज्यादा जरूरी है कि जिंदगी की चौहदी बड़ी हो। वह खेत हन्नू की जिंदगी की चौहदी है, उससे उसकी परवरिश चलती है। यह सरासर बेवकूफी होगी कि परवरिश देने वाली जमीन को कब्रिस्तान में बदल दिया जाये।" रदीफ़ को इस करारे और बेलाग जिरह के लिए लताड़-दुत्कार सहनी पड़ी और फिर बड़े डंडे भी खाने पड़े।

अब उसके प्राथमिक उपचार के लिए सोगरा ने सारा इंतजाम अलग से रख लिया था और मलहम-पट्टी से लेकर सुई लगाने तक का काम खुद ही करने लगी थी। एक बार उसने कहा, "सोचती हूँ कि अल्लाह ने तुम्हें सर फोड़वाने की हिम्मत और जुनून दिया है, तो बेहतर होता कि तुम्हें और दो-चार सर भी दे दिया होता।"

रदीफ ने उसकी आँखों में मोहक मुस्कान की एक तरंग प्रेषित करते हुए कहा, "तुम्हारी जैसी दयानतदार और रहमदिल डॉक्टर हो तो फिर यह एक सर ही काफी है बार-बार फोड़वाने के लिए।"

.....

बगल के गाँव से एम एल ए का बेटा अपने कुछ नालायक साथियों के साथ मुसहरी में आकर ताड़ी पीता था और औरतों के साथ बदसलूकी करता था। दबंग और पागल सांड़ की एक नाक में नकेल कौन डाले, सब डरते थे उससे। रदीफ ने एक जोरदार पत्थर की तरह मारी उसके मुँह पर चेतावनी, "एम एल ए का बेटा हो तो सभी तुम्हारे खरीदे हुए गुलाम और बंदी नहीं हो गये कि जिस किसी के साथ तुम जैसा चाहो सलूक करो। ताड़ी पीने का बहुत शौक है तो कल से अपने गाँव में ही पीकर नंगा नाच करो। और अगर बड़ी जाति होने के दम में गाँव में पीने में शर्म आती है तो अपने घर में मंगा लिया करो। दोबारा इस गाँव में आए तो बहुत कड़ी सबक तुम्हें झेलनी होगी।" मौके पर तो वह सहमकर चुप रह गया मगर बाद में उसने बदला लेते हुए रदीफ पर जानलेवा हमला करवाया।

प्राथमिक उपचार फिर सोगरा के हाथों। इस बार हाथ में फ्रेक्चर था। शौकत साहब ने प्लास्टर चढ़ा दिया और उसे तीन महीने तक अपनी गर्दन से हाथ लटकाकर रखना पड़ा।

.....

हरिजनों के लिए एक प्राथमिक विद्यालय बनाने की स्वीकृति मिली थी। बगल के गाँव के मुखिया ने उसे अपने गाँव में स्थानांतरित करवा दिया। रदीफ को मालूम हुआ तो वहाँ जाकर डाली गयी बुनियाद को ही उसने हिला दिया और नापाक मंसूबे की ऐसी की तैसी कर दी। ललकारते हुए कहा, "मेरे गाँव का स्कूल मेरे ही गाँव में बनेगा या नहीं तो फिर इसे हम कहीं नहीं बनने देंगे।"

उसने काम रोकवा दिया जिसका अंजाम उसे फिर झेलना पड़ा। मुखिया के लठैतों ने उसे घेर लिया और उस पर टूट पड़े।

सोगरा ने उस पर अपनी अपार श्रद्धा न्योछावर करते हुए कहा, "तुम्हें एक मामूली आदमी के रूप में नहीं बल्कि किसी शहंशाह या सुपरमैन बनकर जन्म लेना था इस धरती पर ताकि पूरी दुनिया की तस्वीर बदलने के लिए तुममें एक चमत्कारी ताकत पैबस्त होती।"

रदीफ ने कहा, "मैं गरीब भी नहीं हूँ सोगरा, तुम्हारे जैसे दोस्त की रहमत और मुहब्बत जिसे हासिल हो, वह किसी शहंशाह से कम दौलतमंद नहीं कहा जा सकता। मैं अगर इंसाफ और इंसानियत के हक में अपनी मामूली ताकत लेकर खड़ा हो जाता हूँ, यह जानते हुए भी कि मुझे पिटना और परेशान होना है, तो इसमें मेरा कोई कमाल नहीं हैं, मेरे दोस्तों और खैरख्वाहों की हिमायत इसका खास मोहर्रिक (कारक) है।"

"इस तरह तुम कब तक किस-किस चीज के लिए मार खाते रहोगे। क्या कभी ऐसी स्थिति भी आएगी कि मारने की नहीं तो कम से कम मार खाने की नौबत खत्म हो जाये।"

"नहीं सोगरा, शायद ऐसी स्थिति कभी नहीं आ पायेगी, ऐसा है यह मेरी ख्वाहिश भी नहीं है। मुखालफत करना है तो हमें मार खानी ही पड़ेगी, हमारी यही क्लास है, इसमें तगईयुर (रूपांतरण) नहीं हो सकता। लेकिन इसका मानी तुम यह मत निकाल लेना कि मार खाना हार जाना होता है। मैं मार जरूर खाता रहा हूँ फिर भी हर बार अपने मकसद में कामयाब रहा हूँ। बल्कि अब तो मुझे लगता है कि मार खाने के बदले में अपना पक्ष ज्यादा मजबूत हो जाता हैं, भले ही इसमें जरा जिस्मानी तकलीफ उठानी पड़ती है।"

सोगरा जैसे अभिभूत हो गयी बहुत सम्मोहित होकर बहुत देर तक वह निहारती रही थी रदीफ को। शायद यही पल था जब उसे इलहाम हुआ कि पर्दे के हवाई हीरो और जिंदगी के असली हीरो में क्या फर्क है। ऐसी-ऐसी छोटी लड़ाई और जेहाद रदीफ की जिंदगी में एक-एक कर नामालूम और बेअख्तियार तरीके से अपने आप शामिल होते

गये थे। कुछ लड़ाइयाँ, बहू-प्रताड़ना, पुत्र-उपेक्षा, जातीय-टकराव, सिंचाई-संघर्ष आदि से जुड़ी तो ऐसी थीं जिनका कोई अंत नहीं था। सोगरा के नौकर ममदू मियाँ की बेटी हर चार-पाँच महीने में ससुराल से भगा दी जाती थी और रदीफ उसे हर बार पहुँचाने का जिम्मा उठा लेता था उसके शौहर और ससुर को समझाने से लेकर डराने-धमकाने तक की क्रियाओं को उसे अंजाम देना पड़ता था।

सोगरा की दवा रदीफ के लिए एक अचूक उपचार साबित होती थी। उसने समझाया तो मानो उसके भीतर मुरझाया कोई पेड़ फिर से हरा हो गया।

रदीफ के जीने का यही ढंग था चोट खाता था लहूलुहान होता था और उपचार लेकर जख्म ज्यों हीं भर जाते थे फिर पुरानी को भूलकर नयी चोट खाने के रास्ते पर चल पड़ता था, उस मछुआरे की तरह जिसे लहरों और थपेड़ों से लड़ने की आदत हो जाती है या फिर उस गुलाब की तरह जो बार-बार काटा जाता है, फिर भी वह बार-बार खिलता है। इस प्रक्रिया में सोगरा हर बार खाद-पानी अर्थात संजीवनी का काम करती थी।

अचानक एक मोड़ ऐसा आ गया कि यह संजीवनी भी उसके लिए सुलभ नहीं रह गयी। एक दिन सायबाने पर आकर ममदू मियाँ ने हम सभी साथियों को एक-एक दावत-कार्ड लाकर दिया। इसे पढ़ते ही जैसे हमारे होश उड़ गये। यह सोगरा की शादी का कार्ड था लडका मंुबई में डॉक्टर था सोगरा की भी डॉक्टरी की पढ़ाई अब पूरी होने वाली थी ज़ाहिर है उसके पति को भी डॉक्टर ही होना था। हमने रदीफ के चेहरे को पढ़ने की कोशिश की लगा कि वह बहुत खुश हुआ इस सूचना को पाकर। हमें बहुत आश्चर्य हुआ तो क्या दोनों में यही करार था कि वे मोहब्बत करते हुए भी अलग-अलग मंजिल के राही होंगे? हमें बरबस उसके रिहर्सल के आशिकाने जुमले याद आ गये थे, "तुम्हारी यादों को अपने सीने में महसूस करता हूँ तो तमाम कमियों, तकलीफों और जिंदगी से हजार शिकायतों के बावजूद लगता है कि मैं दुनिया का सबसे खुशनसीब आदमी हूँ। सोचता हूँ कि तुम बेवफा भी हो जाओगी तो तब भी जीने के लिए मेरे पास यह एहसास काफी होगा कि कभी तुमने मुजे दिलोजां से चाहा था।"

डॉक्टर शौकत अगले दिन खुद ही हम सभी से आकर मिले और इंतजाम की कुछ-कुछ जिम्मेदारी सौंपते हुए कहा कि किसी को भी गैरहाजिर नहीं होना है। रदीफ से तो उन्होंने खासतौर पर गुजारिश करते हुए कहा कि उसे हर इंतजाम की देखरेख करनी है। शादी नवादा के एक होटल में संपन्न होनी थी।

हम सभी दोस्त बहुत कायल थे कि शौकत साहब ने हमें भी दावत के लायक समझा। निकाह के दिन हम सभी साथी वहाँ पहुँचकर कार्यकर्ता की भूमिका में थे। रदीफ हर इंतजाम की रहनुमाई कर रहा था। निकाह की घड़ी आयी तो वह मौके से गायब हो गया। एक अँधेरे में हमने उसे बमुश्किल ढूँढ़ा। वह जार-जार रो रहा था जैसे उसकी बसी-बसायी एक दुनिया उजड़ गयी हो या उसके भरोसे के एक मजबूत किले में सेंध लग गयी हो। हमे लगा कि उसके भीतर फिर कोई एक गुंबज ढह गया। रदीफ कहीं हीरो नहीं बन पाया गाँव में हर जगह उसे मार खानी पड़ी बम्बई ने भी उससे वफा नहीं की एक उम्मीद थी सोगरा के पास, वहाँ भी वह पिट गया।

.....

हममें से कुछ फटेहाल-विपन्न लड़के, जो कैसी भी एक नौकरी के लिए मुँह बाये थे और सभी रिक्तियों में अपना आवेदन दाखिल करते थे, छोटी-छोटी नौकरियाँ पाने में हम

वाकई सफल हो गये। मैं जब नौकरी में लग गया तो गाँव मुझसे लगभग छूट गया। कभी उत्सव-शोक में जाना हुआ भी तो ठहरने की मियाद क्रमश: कम होती गयी, रात्रि-विश्राम से घंटों में बदलती हुई। चूँकि वहाँ हमारे लिए ऐसा कुछ लक्ष्य नहीं था जो हमें खींचे रहता।

बहुत अर्सा बाद एक सप्ताह तक ठहरने का कार्यक्रम तय हुआ। इस दौरान मिले वक्त में फिर से पुरानी गलियों, चौबारों और साथियों के बंद पृष्ठ खुलने लगे। गाँव में काफी कुछ बदल चुका था, लेकिन मेरे लिए सबसे बड़ा बदलाव यह था कि हमारा हीरो रदीफ मियाँ एक हलवाहा बन गया था। मतलब जो हम सभी साथियों में सिरमौर था, जिसे देखकर हमें रश्क होता था, फख्र होता था, जिसे सबसे बड़ा आदमी बनना था वह गाँव का सबसे छोटा आदमी बन गया था। मैंने देखा कि कादो-कीचड़ में नंगे बदन लिटाया-पिटाया रदीफ हल जोत रहा है। मुझे उसकी उन दिनों की सजधज, लिबास और अदाएँ याद आ गयीं। तब हमारे बदन पर कपड़े नहीं होते थे, आज रदीफ के बदन पर कपड़े नहीं हैं। उसके दाहिने बाजू पर एक लंबी पट्टी बँधी है। मतलब आज भी उसमें इंसाफ के लिए खुद को झोंक देने की तत्परता कायम है और इसके एवज में जख्म उठा लेने का हौसला भी, भले ही मलहम-पट्टी करने वाले दो हमदर्द हाथ अब नहीं रहे। पता नहीं क्यों मुझे लगा कि रदीफ उन दिनों भी हम सबसे अलग था और आज भी एकदम अलग है।

मुझे देखते ही वह हल छोड़कर मेरे पास आ गया। उसने मुझे हर्ष मिश्रित विस्मय के साथ सरसरी तौर पर निहारा, फिर कहा, "तुम्हें देखकर मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। मैं महसूस कर रहा हूँ कि आदमी को अपनी औकात के ही ख्वाब देखने चाहिए। तुम लोगों ने छोटे-छोटे ख्वाब देखें और देखो, आज कितने सुखी हो। मुझे देखो, जन्नतों और हूरों के ख्वाब देखते-देखते बर्बादियों और नाकामयाबियों का एक नमूना भर बनकर रह गया हूँ।" रदीफ का गला जैसे भर आया।

मैंने उसकी हथेलियों को अपने सीने से लगा लिया, "ऐसा मत कहो रदीफ, तुम आज भी हीरो हो दोस्त! अपने दुखों, तकलीफों से अपराजित। किसी भी देश का असली हीरो किसान ही होता है, उसके उगाये अन्न खाकर ही सभी जीते हैं। अन्न के अलावा हम कुछ भी बना लें, सीमेंट, कपड़ा, लोहा, कागज, प्लास्टिक, इन्हें खा तो नहीं सकते।" मैंने ऐसा कह तो दिया परन्तु मुझे यह अहसास था कि ऐसे विचार सिर्फ मन रखने के लिए प्रकट किये जाते हैं। वस्तुत: किसी का भी चुनाव किसान बनना कतई नहीं होता। जब कोई कुछ नहीं बन पाता तो विवश होकर खेती में लग जाना उसका आखिरी समझौता होता है। दिमागी तहखाने में दबे पड़े रदीफ के वे वाक्य उभरने लगे थे अचानक, "अब यह नाइंसाफी नहीं चलेगी कि छोटे लोग सब दिन छोटे बने रहें और बड़े घर के नालायक लोग भी बड़े बने रहें।" इन पक्तियों का निहितार्थ जरा-सा भी फलित कहाँ हो पाया। रदीफ लाख प्रतिभा और मेहनत के बावजूद छोटे का छोटा ही बना रह गया और इस बीच कितने-कितने पुराने जमाने के बूढ़े हीरो के नालायक बेटे बिना किसी मशक्कत के नये जमाने के हीरो बनते रहे।

रदीफ के लिए कलेवा लेकर उसका बेटा आ गया था, उसी की तरह, लंबा, खूबसूरत, दिलकश, पानीदार और भरा-पुरा। रदीफ ने उससे मेरा परिचय कराते हुए कहा, "तुम्हें जानकर ताज्जुब होगा, मेरा यह बेटा भी मेरी तरह पागल निकला। इस पर भी सनक सवार हो गयी है हीरो बनने की। मेरे खट्टे तजुर्बे और कांटेदार तारीख से यह कोई सबक नहीं लेना चाहता। कहता है आपका जमाना कुछ और था पहले दो-चार फिल्में साल में बनती थीं अब फिल्मों के अलावा रोज दर्जनों सीरियल बन रहे हैं, सैंकड़ों की तादाद में फनकार उनमें अभिनय कर रहे हैं।"

"तो तुमने क्या तय किया?" मैंने बड़े उतावलेपन से पूछा।

रदीफ ने कहा, "मैं इसे अगले महीने मुंबई भेज रहा हूँ जब मेरे भाइयों ने दर्जनों बार मुझे बंबई जाकर खुद को आजमाने का मौका दिया तो मैं इसका बाप हूँ दो-चार बार इसे भी क्यों मौका नहीं दूँ!"

मैं सचमुच रदीफ का मंतव्य सुनकर हतप्रभ रह गया। एक तरह से उसके बेटे में रदीफ के हीरो बनने की इच्छा का ही मुझे विस्तार दिखाई पड़ रहा था।

रदीफ की यह जीवंतता, जीवटता, हार न मानने की उसकी दृढ़ता मैं एकबार फिर उसका मुरीद हो गया था। अब तक हर मोर्चे पर मार खानेवाला चाहे हीरो बनने में, जरूरतमंदों की इमदाद करने में या फिर सोगरा की मोहब्बत में रदीफ अब भी अगली चोट और अगले जख्म स्वीकार करने का माद्दा रखता था।

आज सोचने पर मैं कह सकता हूँ अपना देश मुझे अब उतना अच्छा नहीं लगता अपने देश में अपना गाँव तो और भी अच्छा नहीं लगता लेकिन गाँव में रदीफ मुझे आज भी अच्छा लगा, बहुत अच्छा लगा, बहुत-बहुत अच्छा लगा।

(१६ मार्च २००३ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)